श्री सेठी दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं० २

श्री जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर माला

द्वितीय भाग (चतुर्थावृत्ति)

अनुवादकः-

श्री मगनलाल जैन

प्रकाशकः-

श्री सेठी दि० जैन ग्रन्थमाला

अंतर्गत—मीठालाल महेन्द्रकुमार सेठी दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट

६२. धनजी स्ट्रीट बम्बई ३.

प्रथम संस्करण वीर नि० सं० २४८३

प्रति १०००

दूसरा संस्करण वीर नि० सं० २४८६

प्रति १०००

तीसरा संस्करण वीर नि० सं० २४८८

प्रति ११००

चतुर्थावृत्ति वीर नि० सं० २४९०

प्रति १२००

इस ग्रन्थ में कागज ६ फार्मों में रीम ७१
१०×३० २८ पौंड का लगा है।

द्वितीय भाग मूल्य ६० न. पै

मुद्रक—
मूलचन्द जैन
श्री जैन आर्ट प्रिन्टर्स,
नया बाजार, अजमेर।

प्रस्तावना

इस पुस्तकमे मुख्य उपयोगी प्रश्न और उनके अनुशीलन मे जो जो नये उपयोगी प्रश्न उद्भूत हुए उन सबका उत्तर सहित समावेश किया गया है तथा उन प्रश्नोका प्रकरणानुसार वर्ग बनाके मालारूप गूंथ कर "श्री जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला" के नामसे आज मुमुक्षुओ के हाथ मे देते हुए हर्ष हो रहा है।

इस माला मे प्राथमिक अभ्यासियो को—मुख्यतः तत्वके जिज्ञासुओको अध्ययनके लिये जो जो विषय अत्युपयोगी हो वे सभी –द्रव्य–गुण–पर्याय, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य, द्रव्य के सामान्य विशेष गुण, चार अभाव, यहाँ तक प्रश्नोत्तर तो प्रथम भाग में दिया गया है बाद इस दूसरे भाग मे—पाँचवें प्रकरण मे कर्ता-कर्मादि छह कारक, छठवें प्रकरण मे उपादान-निमित्त तथा नि० नैमित्तिक,निश्चय-व्यवहार, फिर सातवें प्रकरण मे सात तत्त्व, तथा उसमे भूल,देव, शास्त्र, गुरु का स्वरूप, धर्म का स्वरूप वगैरह शास्त्राधार से लिया गया है।

तीसरे भाग वाली पुस्तक के आठवें प्रकरण मे लक्षण, प्रमाण, नव-निक्षेप, जैन शास्त्रो में पाँच प्रकार से अर्थ करने की रीति, और नयाभासो का वर्णन है।

प्रकरण नव मे अनेकान्त और स्याद्वाद अधिकार है।

दसवें प्रकरण मे मोक्षमार्ग अधिकार है जिसमे पुरुषार्थ, स्वभाव काललब्धि, नियति, कर्म ये पाँच समवाय और मोक्षमार्गके

विषय में अनेक प्रयोजनभूत बातों की स्पष्टता की है जो अवश्य समझने योग्य है। बाद में परिशिष्ट नं० १–२ पढ़ने योग्य हैं इस पुस्तक में अध्याय ५ से ७ तक लिया है तीसरा भाग भी छप चुका है जिसमें अध्याय ८ से १० तक पूर्ण वर्णन आयेगा।

(१) निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध आदि:—

निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध वास्तव में व्यवहारनय का विषय है इसलिये उसका अर्थ करने में मुख्य ध्यान रखने की आवश्यकता है क्योंकि, निमित्तकारण वह सच्चा कारण नहीं है मात्र वह आरोपित कारण है। प्रति समय प्रत्येक द्रव्य में अनादि से अनंतकाल तक पर्यायें होती ही रहती हैं और पर्याय वह कार्य है। कार्य तो वास्तव में उपादान सदृश होता है, किन्तु उस समय जिस पदार्थपर कारण न होने पर भी कारणपनेका आरोप आता है उसे निमित्त कहते हैं उस निमित्त सम्बन्धी ज्ञान करना आवश्यक है, किन्तु निमित्तके कारण नैमित्तिकमें कुछ कार्य होता है ऐसा मानना वह निमित्त को निमित्त न मानकर वास्तव में उपादान मानने के बराबर होता है व्यवहार कारण व्यवहाररूप न रहकर निश्चय कारण हो जाता है। जीव अनादिसे व्यवहार को निश्चय मानता आ रहा है इसलिये शास्त्राभ्यास करते हुए भी यदि जीव व्यवहारको निश्चयरूप मानने का अर्थ करें तो उसको अनादि-कालीन भूल दूर नहीं होती।

निमित्त के बिना कार्य नहीं होता—ऐसा कथन भी व्यवहार का है, यथार्थ ऐसा नहीं है; किन्तु प्रत्येक कार्य के समय उचित

निमित्त उपस्थित होता है-ऐसा बतलानेके लिए वह कथन आता है; तथापि यदि उपादान को निमित्त की आवश्यकता पड़ती है या उसकी प्रतीक्षा करना पड़ती है अथवा सहायता की आवश्यकता होती है, या उसका प्रभाव पड़ता है, अथवा निमित्त के बिना उपादान में सचमुच कार्य नहीं होता-ऐसा माना जाये तो यह सिद्ध होगा कि पर के बिना स्व में कार्य नहीं होता। किंतु प्रत्येक द्रव्य का कार्य अपने-अपने छह कारकों से स्वतंत्ररूप से होता है; इसलिये ऐसा निर्णय होता है कि कार्य होते समय निमित्त की उपस्थिति होती है इतना ज्ञान कराने के लिए उसे दर्शाया होता है। निमित्त से कार्य हुआ-ऐसे कथन जैन शास्त्रो मे आते हैं उन्हे भी व्यवहार नयका कथन समझना। वहाँ ऐसा अर्थ करना चाहिये कि निमित्त से नैमित्तिक कार्य नही हुआ है, किन्तु नैमित्तिक मे स्वतत्ररूप मे कार्य हुआ उस समय निमित्त कौन था— यह बतलाने के लिये वह कथन किया है।

कोई ऐसा मानता है कि—निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध जीव की पर्याय और कर्म के बीच ही होता है; अन्य किसी के बीच नही होता, किन्तु वह बात बराबर नही है। दूसरो के बीच भी निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होता है। मात्र जब जब कारण बतलाना हो तब तब उपादानकारण और निमित्तकारण—ऐसा कहा जाता है, और दो पदार्थोंके बीचके कारण-कार्य बतलाना हो तब निमित्त कारण और नैमित्तिक कार्य—ऐसा कहा जाता है, तथा एक ही द्रव्य में उसका कारण-कार्य बतलाना हो तो उपादानकारण और उपादेय कार्य कहा जाता है। इस सम्बन्धी स्पष्टीकरण इस पुस्तक के प्रश्नोत्तर

१९१ (पृष्ठ ३७–३८) में किया गया है।

कुछ लोगों की ऐसी मान्यता है कि कर्मोदय के अनुसार जीवको Degree to Degree विकार करना ही पड़ता है।—ऐसी मान्यता दो द्रव्यों की एकत्व बुद्धि में से उत्पन्न होती है। कर्म का जीव में सर्वथा अभाव है वह जीवके लिये अद्रव्य अक्षेत्र अकाल अभाव है। इसलिये जीव वास्तव में अपने कारण विकार करता है तब निमित्त कौनसा कर्म है वह बतलाने के लिये शास्त्र में कर्म के उदय से जीव में विकार होता है—ऐसा कहा जाता है। इस संबंधी स्पष्टीकरण प्रश्नोत्तर १७१ तथा १९६ में किया गया है। सारांश यह है कि निमित्त-व्यवहार और परद्रव्य इन सब का ज्ञान करनेकी आवश्यकता है क्योंकि उस ज्ञान के बिना यथार्थ ज्ञान नहीं होता। फिर भी उनमें से किसी के आश्रय से कदापि धर्म नहीं होता और वह धर्म का कारण भी नहीं होता—ऐसा अचूक निर्णय करना चाहिये। निमित्तादिका ज्ञान कराने के लिये निमित्तकी मुख्यता से कथन होता है कार्य तो उपादान की मुख्यता से होता है।

श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव रचित पुरुषार्थसिद्ध्युपाय ग्रंथ के २२५ वें श्लोक का जो अर्थ है वह उपयोगी होने से उसका यहाँ अवतरण देते हैं।

(२) जैनी नीति अथवा नय विवक्षा—

> एकेनाकर्षन्ती श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण।
> अन्तेन जयति जैनीनीतिर्मन्थाननेत्रमिव गोपी ॥ २२५ ॥

अर्थ—मथनी की रस्सी खींचने वाली गोवालिन की भांति जिनेन्द्र भगवानकी जो नीति अर्थात् नय विवक्षा है वह वस्तु स्वरूप

को एक नय विवक्षा से खीचती और दूसरी नय विवक्षा से ढील देती हुई अन्त अर्थात् दोनो विवक्षाओ द्वारा जयवत रहे।

भावार्थ—भगवान की वाणी स्याद्वादरूप अनेकान्तात्मक है, वस्तु का स्वरूप प्रधानतया गौण नय की विवक्षा से किया जाता है। जैसे कि—जीव द्रव्य नित्य भी है और अनित्य भी है, द्रव्यार्थिक नय की विवक्षा से नित्य है और पर्यायार्थिक नय की विवक्षा से अनित्य है। यह नय विवक्षा है।

[देखिये, जिनवाणी प्रचारक कार्यालय कलकत्ता द्वारा प्रकाशित–"पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय," पृष्ठ १२३]

यह श्लोक ऐसा वतलाता है कि—शास्त्र मे किसी स्थान पर निश्चयनय की मुख्यता से कथन है और कही व्यवहार नय की मुख्यता से, किन्तु उसका अर्थ यह नही है कि सच्चा धर्म किसी समय व्यवहारनय (अभूतार्थनय) के आश्रयसे होता है और कभी निश्चयनय (भूतार्थनय) के आश्रय से होता है, धर्म तो सदैव निश्चयनय अर्थात् भूतार्थनय के विषय के आश्रय से ही होता है।

ऐसा न्याय उसी शास्त्र के पाँचवें श्लोक मे तथा श्री **कार्तिकेयानुप्रेक्षा** ग्रन्थ की गाथा ३११–३१२ के भावार्थ मे दिया है, इसलिये इस श्लोक का दूसरा कोई अर्थ करना योग्य नही है।

इस प्रस्तावना मे मुख्य–मुख्य विषयो सम्वन्धी योग्य मार्गदर्शन स्पष्टता पूर्वक सक्षेप मे किया गया है। इतना दर्शाने के पश्चात् नम्र अनुरोध है कि–मात्र यह प्रश्नोत्तर मालाको पढ लेने से तत्त्वका यथार्थ ज्ञान नही हो सकता, इसलिये उसका यथार्थ ज्ञान करने के

लिए तत्त्व जिज्ञासा पूर्वक ज्ञानियोंका प्रत्यक्ष उपदेश सुनना चाहिये। जिज्ञासुओं को सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक व्याख्यानों का अवश्य लाभ लेना चाहिये। जो अपनी आत्मा के लिय विशेष लाभ का कारण होगा।

जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर माला तीसरा भाग भी तीसरीबार छपकर तैयार हो गया है वह भी अवश्य पढ़ कर सच्चा आत्म हित का लाभ लेना चाहिये।

वीर सं० २४८८
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

रामजी माणेकचन्द दोशी
प्रमुख
श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट

निवेदन

जब कि मैं सावन मास स० २०१३ में प्रौढ़ जैन शिक्षणवर्ग मे अभ्यास करने के लिये सोनगढ गया था और वर्ग मे अभ्यास करता था उस समय अभ्यासियो को पूछे जाने वाले प्रश्नो को जिसप्रकार सुन्दर रीति से समझाया जाता था वह प्रश्नोत्तर की शैली समझ कर मेरे हृदय मे यह भाव जागृत हुआ कि अगर ये प्रश्नोत्तर भले प्रकार से सकलन करके स्कूल एवं पाठशाला में जैन धर्म की शिक्षा लेने वाले शिक्षार्थियो को सुलभ कर दिये जायें तो सत् धर्म की भले प्रकार से प्रभावना हो और बहुत लोगो को लाभ मिल सके। यह भाव जागृत हुए थे कि मालूम हुआ श्रद्धेय वयोवृद्ध श्री रामजी भाई माणकचन्दजी दोशी सपादक आत्मधर्म एव प्रमुख श्री जैन स्वा० मदिर ने बहुत प्रयास करके लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका के प्रश्नो पर सर्वांग सुन्दर पुस्तिका गुजराती मे तैयार की है और वह छपने भी प्रेस मे चली गई है, यह जानकर मुझे बहुत हर्ष हुआ और मैंने उसको हिन्दी अनुवाद करने के लिये भेज दिया। इसी समय मेरा यह भाव जागृत हुआ कि एक ग्रथमाला चालू की जावे जिसका नाम सेठी दि० जैन ग्रथमाला हो तथा वह भले प्रकार से आगामी भी चलती रहे। उसके लिये मैंने मेरे पूज्य श्री पिताजी की आज्ञानुसार एक ट्रस्ट बनाने का निर्णय किया जिसका नाम श्री मीठालाल महेन्द्रकुमार सेठी दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट रखा। उसी ट्रस्ट के अतर्गत यह सेठी दि० जैन ग्रथमाला चालू की है जिसके कि पहले पुष्प के रूपमे इस जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर माला का प्रथम

निवेदन

भाग प्रकाशित हुआ है, अभी इस प्रश्नोत्तर माला का द्वितीयभाग आपके हाथमें है तथा इसका तृतीयभाग भी प्रकाशित हो गया है।

इसके प्रथमभाग में द्रव्य गुण पर्याय तथा अभाव इन चार विषयों से सम्बन्धित अनेक प्रकार के प्रश्न उठाकर उनके आगम न्याय युक्ति एवं स्वानुभव सहित बहुत ही सुन्दर एवं विस्तृत उत्तर दिये हैं—

इस भाग में छह कारक निमित्त उपादान तथा सात तत्त्व और नव पदार्थों का बहुत सुन्दर प्रश्नोत्तर रूप में विवेचन है तथा तीसरे भागमें प्रमाण नय निक्षेप अनेकान्त और स्याद्वाद तथा मोक्षमार्ग के ऊपर बहुत विशद विवेचन है। इसप्रकार इस ग्रंथ की उपयोगिता तो इसके प्रथम व द्वितीयभाग पढ़नेसे आपको ज्ञात हो ही जावेगी। इतनी बड़ी विशद पुस्तक को ३ भाग में छपाने का मेरा खास उद्देश्य यही है कि जैन समाज की शिक्षण संस्थाएं इन पुस्तकों को धर्म की शिक्षा के लिये कक्षाओं में काम ले सकें तथा अलग अलग विषयों पर मनन करने के लिये अभ्यासियों को अलग अलग पुस्तक रखने में सुगमता हो।

अत मेरी अभिलाषा सफल हुई तो अपना प्रयास सफल समझूंगा। इस कार्य के पूरा करने में भाई श्री नेमीचन्दजी पाटनी किशनगढ़वाले भाई श्री हरिलालजी जीवराजजी भायाणी भावनगर वालों ने एवं ब्रह्मचारी भाई श्री गुलाबचन्दजी ने बहुत मेहनत की है उसके लिये मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

२४८८
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

निवेदक
महेन्द्रकुमार सेठी

निवेदन

१५-२० सालसे जैन धर्म मे प्रयोजनभूत तात्त्विक ज्ञान का अभ्यास करने की जिज्ञासा बढ रही है, और उसे समझने वालो की सख्या भी बढ रही है उनका श्रेय परमोपकारी पूज्य कानजी स्वामी को ही है। आपके तत्त्वावधानमे दि० जैन स्वाध्याय मदिर ट्रस्ट द्वारा चार लाख उपरान्त ग्रथ छप चुके है। उसके अलावा सेठी ग्रंथमाला द्वारा गत छह साल से आज तक २५३०० पुस्तक छप चुके हैं। अपना हित-अहित अपने से ही हो सकता है, पर द्रव्यादिक को दोष देना अन्याय ही है। पर्याय दृष्टि से परतत्र भी अपने अशुद्ध उपादान द्वारा-विपरीत पुरुषार्थ द्वारा स्वय होता है। सयोग की ओर से देखने से अपने मिथ्या प्रतिभास वश 'अपनेको आप भूल के हैरान हो गया' अर्थात् शरीरादिक पर द्रव्योमे और शुभाशुभ आस्रवो मे कर्त्तापन की रुचि और ज्ञाता स्वभावकी अरुचि द्वारा यह जीव राग की रुचि व पराश्रय की श्रद्धाका ग्रहण और स्व धर्म का त्याग कर रहा है जो सर्व दु खो का मूल है यह बडी भारी भूल छोडने के लिये श्रुतज्ञान द्वारा ज्ञान स्वरूप आत्मा का निर्णय पूर्वक यथाथता, स्वतत्रता और वीतरागता ही ग्रहण करनी चाहिये। विपरीत अभिप्राय रहित तत्त्वार्थ श्रद्धान (सम्यग्दर्शन) अपने में प्रगट करने के लिये सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वज्ञान द्वारा निश्चय-व्यवहार, हेय उपादेय, निमित्त-उपादान और स्वतत्र कारण कार्य को सुनिश्चित-व्यवस्थित मर्यादा को आत्महितार्थ जानकर शुद्धनय के विषयभूत सर्वज्ञस्वभावी निज कारण परमात्मतत्त्वका आश्रय करना चाहिये, ऐसा करे तो यह-शास्त्राभ्यासको निमित्त (उपकारी) कहा जायेगा। ऐसे स्पष्ट उपदेश दाता पू० गुरुदेव का जितना उपकार माना जायकम ही है।

ब्र० गुलाबचन्द जैन

वीर स० २४९० भाद्र० सुदी५ ऋषि पचमी—सोनगढ (सौराष्ट्र)

अर्पण

परम कृपालु पूज्य
आत्मार्थी सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के
कर कमल में

जिनके उत्कृष्ट अमृतमय उपदेश को प्राप्त कर इस पामर ने अपने अनादि अंधकार को दूर करने का यथार्थ मार्ग प्राप्त किया है ऐसे महान महान उपकारी सत् धर्म प्रवर्तक पूज्य श्री कानजी स्वामी के कर कमलों में श्री १०८ श्री कुन्दकुन्दाचार्य की तपोभूमि पोन्नुरहिल की विराट् यात्रा तथा उस पुनीत तीर्थ के उद्धार बाद ७५ वीं हीरकजयंती के अवसर पर, अत्यन्त आदर एवं भक्ति पूर्वक यह पुस्तिका अर्पण करता हूं और भावना करता हूं कि आपके बताये मार्ग पर निश्चलरूप से चल कर निःश्रेयस अवस्था को प्राप्त करूं ।

वीर सं० २४९०
भाद्रपद सुदी ९

विनम्र सेवक
महेन्द्रकुमार सेठी

मुख्य विषय

इन प्रकरणो के गौण विषयो की अनुक्रमणिका तथा आधारभूत ग्रथों की सूची आगे दी गई है।

आधारभूत ग्रन्थों की सूची

श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका
श्री लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका
श्री परमार्थ वचनिका
श्री जैन सिद्धान्त दर्पण
श्री प्रवचनसार गुजराती तथा हिंदी
श्री मोक्षमार्गप्रकाशक गुजराती, हिंदी
श्री बृहद् द्रव्य संग्रह
श्री मोक्षशास्त्र गुजराती
श्री गोम्मटसार जीवकांड कर्मकांड
श्री पंचाध्यायी (हिंदी) पं० फूलचंदजी
श्री पंचाध्यायी गुज पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध
श्री आत्मधर्म (गुजराती) अंक १७०
श्री चिद्विलास
श्री समयसार गुजराती
श्री समाधि शतक
श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा
श्री आत्मावलोकन
श्री द्यानतराय कृत छहढाला
श्री सर्वार्थ सिद्धि
श्री तत्त्वार्थ राजवार्तिक टीका
श्री अर्थ प्रकाशिका
श्री श्रुतसागरी टीका
श्री तत्त्वार्थ सूत्र अंग्रेजी
श्री बृहत् स्वयंभू स्तोत्र
श्री आलाप पद्धति
श्री मोक्षशास्त्र पं० पन्नालालजी कृत
श्री तत्त्वार्थसार
श्री नियमसार गुजराती
श्री चर्चा समाधान
श्री समवसरण पाठ
श्री पंचास्तिकाय
श्री बनारसी विलास
श्री चिद्रूपमन बोधक
श्री जिनेन्द्र स्तुति
श्री अष्ट पाहुड़
श्री सहायवक्ता पु १२ वीं
श्री धवला पु० ७ वीं
श्री अनुभव प्रकाश
श्री समयसार नाटक
पं० बनारसीदासजी कृत
श्री छहढाला पं० दौलतरामजी कृत
श्री परमात्म प्रकाश
श्री तत्त्वार्थ सूत्र
पं० फूलचन्दजी कृत
श्री अष्टसहस्री
श्री ज्ञान दर्पण
श्री न्याय दीपिका
श्री इष्टोपदेश
श्री अष्टशती
श्री प्रमेयकमल मार्तण्ड
श्री आप्तमीमांसा
श्री तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक टीका
श्री परीक्षा मुख
श्री आत्मानुशासन

प्रश्न-सूची

प्रश्न प्रश्नांक

(अ)

(आ)

(इ)

(उ)

[न]

प्रकरण सातवाँ

[यहाँ पत्र संख्या समझना]

(त)

❀ जैन शास्त्रों के अर्थ करने की पद्धति ❀

व्यवहारनय स्व-द्रव्य–पर-द्रव्य को तथा उसके भावों को एवम् कारण-कार्यादि को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है। इसलिये ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व है। अतः इसका त्याग करना चाहिये।

निश्चयनय उसी को यथावत् निरूपण करता है तथा किसी को किसी में नहीं मिलाता। इसलिये ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है। अतः उसका श्रद्धान करना चाहिये।

प्रश्न—यदि ऐसा है तो 'जिन' मार्ग में दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है उसका क्या कारण ?

उत्तर—'जिन' मार्ग में कहीं तो निश्चयनय की मुख्यता सहित व्याख्यान है उसे तो 'सत्यार्थ इसी प्रकार है' ऐसा समझना चाहिये तथा कहीं व्यवहारनय की मुख्यता लेकर कथन किया गया है, उसे ऐसा है नहीं किंतु निमित्तादिक की अपेक्षा से यह उपचार किया है,''ऐसा जानना चाहिये। इस प्रकार जानने का नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है। किन्तु दोनों नयों के कथन (व्याख्यान) को समान सत्यार्थ जानकर 'इस प्रकार भी है' और 'इस प्रकार भी है' इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन को तो दोनों नयों का ग्रहण करना कहा नहीं है ?

प्रश्न—यदि व्यवहारनय असत्यार्थ है तो 'जिन' मार्ग में उसका उप

देश क्यो दिया है ? एक मात्र निश्चयनय का ही निरूपण करना चाहिये था।

त्तर–ऐसा ही तर्क 'श्री समयसार' मे किया है। वहाँ यह उत्तर दिया है कि जैसे किसी अनार्य म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा के विना अर्थ ग्रहण कराने मे कोई समर्थ नही है, उसी प्रकार व्यवहार के विना परमार्थ का उपदेश अशक्य है। इसलिये व्यवहार का उपदेश है और फिर इसी सूत्र की व्याख्या मे ऐसा कहा है कि इस प्रकार निश्चय को अगीकार कराने के लिये व्यवहार के द्वारा उपदेश देते हैं, **किंतु व्यवहारनय है वह अंगीकार करने योग्य नही है।**

प्रकरण पाँचवाँ

कर्ता-कर्मादि छह कारक अधिकार

प्रश्न (३४७)–कर्ता किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो स्वतन्त्रता से (स्वाधीनता पूर्वक) अपने परिणाम को करे वह कर्ता है।

[प्रत्येक द्रव्य अपने मे स्वतंत्र व्यापक होने से अपने ही परिणाम का स्वतत्ररूप से कर्ता है]

प्रश्न (३४८)–कर्म (कार्य) किसे कहते हैं ?

उत्तर–कर्ता जिस परिणाम को प्राप्त करता है वह परिणाम उसका कर्म है।

प्रश्न (३४९)–करण किसे कहते हैं ?

उत्तर–उस परिणाम के साधकतम अर्थात् उत्कृष्ट साधन को करण कहते हैं।

प्रश्न (३५०)–सम्प्रदान किसे कहते हैं ?

उत्तर–कर्म (परिणाम–कार्य) कर्म जिसे दिया जाय अथवा जिसके लिये किया जाय उसे सम्प्रदान कहते हैं।

प्रश्न (३५१)–अपादान किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिसमे से कर्म किया जाय उस ध्रुव वस्तु को अपादान कहते हैं।

प्रश्न (३५२)–अधिकरण किसे कहते हैं।

उत्तर–जिसमे अथवा जिसके आधार से कर्म (कार्य) किया जाय उसे अधिकरण कहते हैं।

[सर्व द्रव्यों की प्रत्येक पर्याय में यह छह कारक एक साथ वर्तते हैं इसलिये आत्मा और पुद्‌गल शुद्ध दशा में या अशुद्ध दशा में स्वयं छहों कारकरूप परिणमन करते हैं और दूसरे कारकों की (निमित्त कारणों की) अपेक्षा नहीं रखते।]

—(देखो पंचास्तिकाय गा० ६२ संस्कृत टीका)

'...निश्चयसे परके साथ आत्माका कारकपने का संबंध नहीं है कि जिससे शुद्धात्मस्वभावकी प्राप्तिके लिये सामग्री (बाह्य साधन) खोजनेकी व्यग्रतासे जीव (व्यर्थ ही) परतंत्र होते हैं।

—(प्रवचनसार गाथा १६ टीका)

प्रश्न (१५३)—कारक कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर— 'यह छह कारक व्यवहार और निश्चय—ऐसे दो प्रकार के हैं। जहाँ परके निमित्तसे कार्यकी सिद्धि कही जाये वहाँ व्यवहार—कारक हैं, और जहाँ अपने ही उपादान कारण से कार्य की सिद्धि कही जाये वहाँ निश्चय—कारक हैं।"

—(प्रवचनसार गाथा १६ भावार्थ)

प्रश्न (१५४)—व्यवहार—कारक दृष्टान्त देकर समझाइये।

उत्तर—"कुम्हार कर्ता है घड़ा कर्म है दंड चक्र डोरी आदि करण हैं जल भरने वाले के लिये कुम्हार घड़ा बनाता है इस-लिये जल भरनेवाला सम्प्रदान है टोकरे में से मिट्टी लेकर घड़ा बनाता है इसलिये टोकरा अपादान है धरती के आधार से घड़ा बनाता है इसलिये धरती अधिकरण है।

इसमे सभी कारक भिन्न-भिन्न हैं। अन्य कर्ता है, अन्य कर्म है, अन्य करण है, अन्य सम्प्रदान है, अन्य अपादान और अन्य अधिकरण है।

"**परमार्थतः कोई द्रव्य किसी का कर्ता-हर्ता नहीं हो सकता;** इसलिये यह व्यवहार छह कारक असत्य हैं, वे मात्र उपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे कहे जाते हैं। **निश्चय से किसी द्रव्यको अन्य द्रव्यके साथ कारकपनेका सम्बन्ध है ही नहीं।**"

—(श्री प्रवचनसार गाथा १६ भावार्थ)

प्रश्न (३५५)-निश्चय कारक दृष्टान्त देकर समझाइये।

उत्तर—"मिट्टी स्वतन्त्ररूप से घडारूप कार्य को पहुचती है—प्राप्त करती है इसलिये मिट्टी कर्ता और घडा कर्म है, अथवा घडा मिट्टी अभिन्न होने के कारण मिट्टी स्वय ही कर्म है, अपने परिणमनस्वभाव द्वारा मिट्टीने घडा वनाया इसलिये मिट्टी स्वय ही करण है, मिट्टीने घडारूप कर्म अपने को ही दिया इसलिये वह स्वय ही सम्प्रदान है। मिट्टीने अपने मे से ही पिन्डरूप अवस्था नष्ट करके घडारूप कर्म किया और स्वय ध्रुव रही, इसलिये स्वय ही अपादान है, मिट्टी ने अपने ही आधार से घडा वनाया इसलिये स्वय ही अधिकरण है।

इसप्रकार **निश्चय से छहों कारक एक ही द्रव्यमें हैं।** परमार्थत एक द्रव्य दूसरे को सहायक नही हो सकता इसलिये और द्रव्य स्वय ही अपने को, अपने द्वारा, अपने लिये, अपने मे से अपने मे करता है इसलिये **यह निश्चय छह कारक ही परम सत्य हैं।**

उपरोक्त रीतिसे द्रव्य स्वयं ही अपनी अनंत शक्तिरूप सम्पदासे परिपूर्ण होने के कारण स्वयं ही छह कारकरूप होकर अपना कार्य उत्पन्न करने में समर्थ है उसे बाह्य सामग्री कोई सहायता नहीं कर सकती "

—(श्री प्रवचनसार गाथा १६ भावार्थ)

प्रश्न (१५६)—आत्मा प्रज्ञा द्वारा भेदज्ञान करती है उसमें कौन कारक हैं ?

उत्तर—आत्मा कर्ता प्रज्ञा करण भेदज्ञान कर्म —इस प्रकार तीन कारक हैं।

प्रश्न (१५७)—एक समय में कितने कारक होते हैं ?

उत्तर—प्रतिसमय छहों कारक होते हैं।

प्रश्न (१५८)—यह छह कारक क्या हैं ? द्रव्य हैं गुण हैं या पर्याय?

उत्तर—यह छह कारक द्रव्य में रहने वाले सामान्य और अनुजीवी गुण हैं। प्रतिसमय उनकी छह पर्यायें नई–नई होती रहती हैं। (कर्ता कर्म करण सम्प्रदान अपादान और अधिकरण ये छह)

प्रश्न (१५९)—आत्मामें से ही आत्मा द्वारा ही शुद्धता प्रगट होती है उसमें कितने कारक हैं ?

उत्तर—आत्मामें से अपादान आत्मा द्वारा करण और शुद्धता प्रगट होती है यह कर्म है इस प्रकार तीन कारक हैं।

प्रश्न (१६)—एक द्रव्यका पर्यायरूपी कार्य वास्तवमें दूसरों के द्वारा हो सकता है दूसरों के आधार से हो सकता है—ऐसा मानने में कितने कारकों की भूल है ?

उत्तर—सभी कारको की भूल है, क्योकि एक कारक को जिसने स्वतत्र न मानकर पराधीन माना उसने छहो कारक यथार्थ नही माने।

प्रश्न (३६१)–आत्मा केवलज्ञान प्राप्त करता है, उसमे छहो कारक किस प्रकार लागू होते हैं ?

उत्तर—"... .केवलज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले **आत्मा को वाह्य सामग्री की अपेक्षा रखकर परतंत्र होना निरर्थक है।** शुद्धोपयोग मे लीन आत्मा स्वय ही छह कारक रूप होकर केवलज्ञान प्राप्त करता है। वह आत्मा स्वय ही अनत शक्तिवान् ज्ञायकस्वभाव द्वारा स्वतत्र होने से स्वय ही कर्ता है, स्वय अनत शक्तिवान् केवलज्ञान को प्राप्त करता है इसलिये केवलज्ञान कर्म है, अथवा केवलज्ञान से स्वय अभिन्न होने के कारण आत्मा स्वयं ही कर्म है, अपने अनतशक्तिवान परिणमन स्वभावरूप उत्कृष्ट साधन द्वारा केवलज्ञान करता है इसलिये आत्मा स्वय ही करण है, स्वय को ही केवलज्ञान देता है इसलिये आत्मा स्वय ही सम्प्रदान है, अपनेमे से मति-श्रुतादि अपूर्ण ज्ञान दूर करके केवलज्ञान करता है इसलिये और स्वय ही सहज ज्ञानस्वभाव द्वारा ध्रुव रहता है इसलिये स्वय ही अपादान है, अपने मे ही अर्थात् अपने ही आधार से केवलज्ञान करता है इसलिये स्वय ही अधिकरण है।-इसप्रकार स्वय छह कारकरूप होने से वह "स्वयभू" कहलाता है ..."

(श्री प्रवचनसार गाथा १६ भावार्थ)

प्रश्न (३६२)–व्याप्यव्यापक भावके बिना कर्ता–कर्म की स्थिति हो सकती है ?

उत्तर—नहीं व्याप्यव्यापक भावके संभव बिना कर्ता–कर्म की स्थिति नहीं ही हो सकती।

व्याप्यव्यापकभावसंभवमृते का कर्तृ कर्मस्थिति ?

अर्थ—व्याप्यव्यापक भाव के संभव बिना कर्ता कर्म की स्थिति कैसी ?

(श्री समयसार गाथा ७५ कलश ४९)

प्रश्न (३६१)-व्याप्यव्यापक भाव का क्या अर्थ ?

उत्तर— 'जो सर्व अवस्थाओं में व्यापे वह तो व्यापक है और कोई एक अवस्था विशेष वह (उस व्यापक का) व्याप्य है इस प्रकार द्रव्य तो व्यापक है और पर्याय व्याप्य है द्रव्य-पर्याय अभेद रूप ही है---ऐसा होने से द्रव्य पर्यायमें व्याप्त होता है और पर्याय द्रव्य द्वारा व्याप्त हो जाती है। ऐसा व्याप्यव्यापकपना तत्स्वरूप में ही (अभिन्न सत्तावाम् पदार्थमें ही) होता है अतत्स्वरूपमें (जिनकी सत्ता–सत्व भिन्न–भिन्न है ऐसे पदार्थों में) नहीं ही होता।

जहाँ व्याप्यव्यापक भाव हो वहीं कर्ता–कर्म भाव होता है व्याप्यव्यापक भावके बिना कर्ता–कर्म भाव नहीं होता। ऐसा जो जाने वह–पुद्गल और आत्मामें कर्ता–कर्म भाव नहीं है– ऐसा जानता है। ऐसा जानने से वह ज्ञानी होता है कर्ता-कर्म भाव रहित होता है और ज्ञाता–दृष्टा–जगत का साक्षी–भूत–होता है।

(श्री समयसार कलश ४९ भावार्थ)

व्याप्यव्यापक भाव या कर्ता–कर्म भाव एक ही पदार्थ म

लागू होते है, भिन्न-भिन्न पदार्थोमे वे लागू नही हो सकते ।

वास्तवमे कोई दूसरोका भला-बुरा कर सकता है, कर्म जीवको ससारमे परिभ्रमण कराते है-इत्यादि मानना वह अज्ञान है ।

निमित्तके विना कार्य नही होता, निमित्त पाकर कार्य होता है-यह कथन व्यवहारनयके हैं । उन्हे निश्चयका कथन मानना भी अज्ञानता है ।

प्रश्न (३६४)-जीवके विकारी परिणाम और पुद्गलके विकारी परिणाम (कर्म) को परस्पर कर्ताकर्मपना है ?

उत्तर—नही, क्योकि—

(१) "जीव, कर्मके गुणोको नही करता, और कर्म जीवके गुणोको नही करता, परन्तु परस्पर निमित्तसे दोनोके परिणाम जानो इस कारण आतमा अपने ही भावसे कर्ता है, परन्तु पुद्गल कर्म द्वारा किये गये सर्व भावोंका कर्ता नहीं है ।"

(श्री समयसार गाथा ८०-८१-८२)

(२) " जिस प्रकार मिट्टी द्वारा घडा किया जाता है उसी प्रकार अपने भाव द्वारा अपना भाव किया जाता है इसलिये, जीव अपने भावोका कर्ता कदाचित् है, किन्तु जिसप्रकार मिट्टी द्वारा वस्त्र नही किया जा सकता, उसी प्रकार अपने भाव द्वारा परभाव किया जाना अशक्य होने से (जीव) पुद्गल भावोका कर्ता तो कदापि नही है यह निश्चय है ।"

(श्री समयसार गाथा ८० से ८२ की टीका)

(३) '—संसार और निःसंसार अवस्थाओंको पुद्गल कर्मके विपाकका सम्भव और असंभव निमित्त होने पर भी पुद्गलकर्म और जीवको व्याप्यव्यापक भावको अभाव होनेसे कर्ताकर्मपने की असिद्धि होनेसे जीव ही स्वयं अंतर्व्यापक होकर संसार अथवा निःसंसार अवस्थामें आदि-मध्य अंतमें व्याप्त होकर ससंसार अथवा निःसंसार ऐसे अपनेको करता हुआ अपने एक को ही करता हुआ प्रतिभासित हो परन्तु अन्य को करता हुआ प्रतिभासित न हो ।''

(श्री समयसार गाथा ८३ की टीका)

(४) 'आत्मा अपने ही परिणामको करता हुआ प्रतिभासित हो, पुद्गलके परिणामको करता तो कभी प्रतिभासित न हो। आत्मा और पुद्गल—दोनों की क्रिया एक आत्मा ही करता है—ऐसा मानने वाले मिथ्यादृष्टि हैं। जड़—चेतन की एक क्रिया हो तो सर्व द्रव्य बदल जानेसे सर्वका लोप हो जाये—यह महान दोष उत्पन्न होगा।

(श्री समयसार गाथा ८६ का भावार्थ)

(५) '—इसलिये जीवके परिणामको अपने परिणामको और अपने परिणामके फलको न जानने वाला ऐसा पुद्गल द्रव्य—परद्रव्य परिणामस्वरूपसे कर्मका नहीं करता इसलिये उस पुद्गलद्रव्यको जीवके साथ कर्ताकर्म भाव नहीं है।

(श्री समयसार गाथा ७९ टीका)

(६) " .कोई द्रव्य किसी अन्य द्रव्यका कर्ता है ही नही, किन्तु सर्व द्रव्य अपने–अपने स्वभावरूप परिणमित होते हैं। मात्र यह जीव व्यर्थ ही कषायभाव करके व्याकुल होता है। और कदाचित् अपनी इच्छानुसार ही पदार्थ परिणमित हो, तो भी वह अपने परिणमित करनेसे परिणमित नही हुआ है, किन्तु जिसप्रकार बालक चलती हुई गाडीको धकेलकर ऐसा मानता है कि "इस गाडीको मैं चला रहा हूँ"-इसी प्रकार वह असत्य मानता है।

(श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक, अधिकार ४–पृष्ठ ९२)

इस परसे सिद्ध होता है कि–जीवके भावका परिणमन और पौद्गलिक कर्मका परिणमन एक–दूसरेसे निरपेक्ष स्वतंत्र है, इसलिये जीवमे रागादि भाव वास्तवमे द्रव्यकर्मके उदयके कारण होते है, जीव सचमुच द्रव्यकर्मको करता है और उसका फल भोगता है–इत्यादि मान्यता वह विपरीत मान्यता है। जीवके रागादिभावके कारण कर्म आये और कर्मका उदय आया इसलिये जीवमे रागादिभाव हुआ–ऐसा है ही नही जीवके भावकर्म और द्रव्यकर्मके बीच मात्र निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध है, कर्ताकर्मभाव नही है, क्योकि दोनोमें अत्यताभाव है।

प्रश्न (३६५)–एक द्रव्यके या द्रव्यकी पर्यायके दो कर्ता हो सकते हैं ?

उत्तर—नही, क्योकि प्रत्येक द्रव्यका परिणमन स्वतंत्र है, वह किसी परद्रव्य या निमित्तकी सहायताकी अपेक्षा नही रखता, वह स्वय कार्यरूप परिणमित होता है।

(१)—"यः परिणमति स कर्ता यः परिणामो भवेत्तु तत्कर्म।
या परिणतिः क्रिया सा त्रयमपि भिन्नं न वस्तुतया ॥५१॥

अर्थ—जो परिणमित होता है वह कर्ता है (परिणमित होनेवालेका) जो परिणाम वह कर्म है और जो परिणति है वह क्रिया है,—यह तीनों वस्तुरूपसे भिन्न नहीं है।'

(कर्ता कर्म और क्रिया—यह तीनों एक द्रव्यकी अभिन्न अवस्थाएँ हैं, प्रदेश भेदरूप भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं।)

(श्री समयसार गाथा ८६ कलश ५१)

(२)—"एकः परिणमति सदा परिणामो जायते सदैकस्य।
एकस्य परिणतिः स्यादनेकमप्येकमेव यतः ॥ ५२ ॥

अर्थ—वस्तु एक ही सदा परिणमित होती है, एकके ही सदा परिणाम होते हैं (एक अवस्थासे अन्य अवस्था एककी ही होती है) और एककी ही परिणति—क्रिया होती है क्योंकि अनेकरूप होने पर भी एक ही वस्तु है, भेद नहीं है।

(श्री समयसार कलश ५२)

(३)—"नोभौ परिणमतः खलु परिणामो नोभयोः प्रजायेत।
उभयोर्न परिणतिः स्याद्यदनेकमनेकमेव सदा ॥ ५३ ॥

अर्थ—दो द्रव्य एक होकर परिणमित नहीं होते दो द्रव्योंका एक परिणमन नहीं होता और दो द्रव्योंकी एक परिणति—क्रिया नहीं होती क्योंकि अनेक द्रव्य हैं वे सदैव अनेक ही हैं (बदलकर एक नहीं हो जाते) (श्री समयसार कलश ५३)

(४)—"नैकस्य हि कर्तारौ द्वौ स्तो द्वे कर्मणी न चैकस्य।
नैकस्य च क्रिये द्वे एकमनेकं यतो न स्यात् ॥ ५४ ॥

अर्थ:—एक द्रव्यके दो कर्ता नही होते, और एक द्रव्यके दो कर्म नही होते तथा एक द्रव्यकी दो क्रिया नही होती; क्योकि एक द्रव्य अनेक द्रव्यरूप नही होता।"

(श्री समयसार–कलश ५४)

इससे समझना चाहिये कि–जीव शरीरादि परकी क्रिया नही कर सकता, निमित्तसे सचमुच कार्य होता है–ऐसा मानना वह एक भ्रम है, क्योकि एक कार्यके दो कर्ता नही हो सकते।

प्रश्न (३६६)–आत्मा काहेका कर्ता है ?

उत्तर–आत्मा अपने परिणामोका ही–शुभ, अशुभ या शुद्ध भावोका ही कर्ता है, किन्तु ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म और शरीरादि नोकर्मका कभी कर्ता है ही नही। क्योकि–

(१)—"अज्ञान ज्ञानमप्येव कुर्वन्नात्मानमजसा।
स्यात्कर्तात्मात्मभावस्य परभावस्य न क्वचित् ॥ ६१ ॥

अर्थ.—इसप्रकार वास्तवमे अपनेको अज्ञानरूप या ज्ञानरूप करता हुआ आत्मा अपने ही भावोका कर्ता है, परभावोका (पुद्गल भावोका) कर्ता तो कभी है ही नही।"

(श्री समयसार कलश ६१)

(२)—"आत्मा ज्ञान स्वय ज्ञान ज्ञानादन्यत् करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽय व्यवहारिणाम् ॥ ६२ ॥

अर्थ.—आत्मा ज्ञानस्वरूप है, स्वय ही ज्ञान है, वह ज्ञानके अतिरिक्त (जाननेके अतिरिक्त) दूसरा क्या करेगा ? आत्मा परभावका कर्ता है ऐसा मानना (तथा कहना) वह व्यवहारी जीवोका मोह (अज्ञान) है।"

(श्री समयसार–कलश ६२)

(३) "प्रथम तो आत्माका परिणाम सचमुच स्वयं आत्मा ही है क्योंकि परिणामी परिणामके स्वरूपका कर्ता होनेके कारण परिणामसे अनन्य है और जो उसका (आत्माका) तथाविध परिणाम है वह जीवमयी क्रिया ही है ...और जो (जीवमयी) क्रिया है वह आत्मा द्वारा स्वतंत्ररूपसे प्राप्य होनेसे कर्म है इसलिये परमार्थसे आत्मा अपने परिणाम स्वरूप ऐसे उस भावकर्मका ही कर्ता है परन्तु पुद्गल परिणाम स्वरूप द्रव्यकर्मका नहीं।

(श्री प्रवचनसार गा० १२२ की टीका)

(४) 'व्यवहारसे (लोग) मानते हैं कि जगतमें आत्मा घड़ा वस्त्र रथ इत्यादि वस्तुओंको और इन्द्रियोंको अनेक प्रकारके क्रोधादि द्रव्यकर्मोंको और शरीरादि नोकर्मोंको करता है।

(श्री समयसार गाथा ९८) किन्तु ऐसा मानना यह व्यवहारी जीवोंका व्यामोह (भ्रान्ति अज्ञान) है क्योंकि–

'यदि निश्चयसे यह आत्मा परद्रव्य स्वरूप कर्मको करे तो परिणाम–परिणामीपना अन्य किसीप्रकार नहीं बन सकता इसलिये वह (आत्मा) नियमसे तन्मय (परद्रव्यमय) हो जाये परंतु वह तन्मय तो नहीं है क्योंकि कोई द्रव्य अन्य द्रव्यमय हो जाये तो उस द्रव्यके नाशकी आपत्ति (दोष) आयेगा इसलिये आत्मा व्याप्य व्यापक भावसे परद्रव्य स्वरूप कर्मका कर्ता नहीं है।

(श्री समयसार–गाथा ९९ टीका)

'योग अर्थात् (मन-वचन-कायके निमित्तसे) आत्मप्रदेशोंका चलना और उपयोग अर्थात् ज्ञानका कषायोंके साथ उपयुक्त होना जुड़ना। यह योग और उपयोग घटादिक तथा क्रोधादिकको निमित्त

हैं इसलिये उन्हें तो घटादिक तथा क्रोधादिकका निमित्त कर्ता कहा जाता है, किन्तु आत्माको उनका कर्ता नही कहा जाता। आत्माको ससारदशामे अज्ञानसे मात्र योग–उपयोगका कर्ता कहा जा सकता है।

तात्पर्य यह है कि-"द्रव्यदृष्टिसे तो कोई द्रव्य अन्य किसी द्रव्य-का कर्ता नही है, परन्तु पर्यायदृष्टिसे किसी द्रव्यकी पर्याय किसी समय किसी अन्य द्रव्यकी पर्यायको निमित्त होती है, इसलिये इस अपेक्षासे एक द्रव्यके परिणाम अन्य द्रव्यके परिणामके निमित्त-कर्ता कहलाते हैं। परमार्थत द्रव्य अपने ही परिणामोका कर्ता है, अन्यके परिणामोका अन्य द्रव्य कर्ता नही है।"

—(श्री समयसार गाथा १०० का भावार्थ)

जो इस प्रकार आत्माका स्वरूप समझता है उसे सयोगकी पृथक्ता, विभावकी विपरीतता और स्वभावके सामर्थ्यका भान होनेसे स्व-सन्मुखता प्राप्त होती है।

"जो पुरुष इसप्रकार "कर्ता, करण, कर्म और कर्मफल आत्मा ही है"—ऐसा निश्चय करके वास्तवमे परद्रव्यरूप परिणमित नही होता, वही पुरुष—जिसका परद्रव्यके साथ सम्पर्क रुक गया है और जिसके पर्यायें द्रव्यके भीतर प्रलीन हो गई हैं ऐसे—शुद्ध आत्माको उपलब्ध करता है, परन्तु अन्य कोई (पुरुष ऐसे शुद्ध आत्माको उपलब्ध नही करता।"

(श्री प्रवचनसार गाथा १२६ टीका)

प्रश्न (३६७)–क्या जीव विकार स्वतत्ररूपसे करता है?
उत्तर—हाँ, क्योकि.—

(१)* —पूर्वकालमें बँधे हुए द्रव्यकर्मोंका निमित्त जीव पा कर अपनी अशुद्ध चैतन्य शक्ति द्वारा रागादि भावोंका (विकारका) कर्ता बनता है तब (उसी समय) पुद्गल द्रव्य रागादि भावोंका निमित्त पा कर अपनी शक्तिसे (अपनेउपादानकारणसे) अष्टकर्मरूप भावको प्राप्त करता है।

"जिसप्रकार चन्द्र या सूर्यके प्रकाशका निमित्त पाकर संध्याके समय आकाशमें अनेक रंग बादल इन्द्रधनुष मंडलादिक नाना प्रकारके पुद्गल स्कंध अन्य किसी कर्ताकी अपेक्षा रखे बिना (अपनी शक्तिसे) ही अनेक प्रकार परिणमित होते हैं उसी प्रकार जीव द्रव्यके अशुद्ध चेतनात्मक भावोंका निमित्त पाकर पुद्गल वर्गणाएँ अपनी ही शक्तिसे ज्ञानावरणादि आठ प्रकारसे कर्म दशा-रूप होकर परिणमित होती हैं।

(श्री पंचास्तिकाय गाथा ६६ की हिन्दी टीका)

(२) इस प्रकरणवशात् अशुद्ध निश्चयनयसे जीवके रागादि विभाव परिणामोंको भी (जीवका) स्वभाव कहा गया है। (देखो पंचास्तिकाय गाथा ६१ की श्री जयसेनाचार्यकृत संस्कृत टीका)

(३) यद्यपि निश्चयसे अपने निजरससे ही सर्ववस्तुओंका अपने स्वभावभूत ऐसे स्वरूप परिणमनमें समर्थपना है तथापि (आत्माको) अनादिसे अन्य वस्तुभूत मोहके साथ संयुक्तपना होनेसे आत्माके उपयोगका मिथ्यादर्शन अज्ञान और अविरति

---

*उपादानसे होनेवाला यह कार्य विकारी है स्वभावभाव नहीं है; किन्तु अवस्तुभाव है—ऐसा बतलाने के लिये तथा निमित्त का ज्ञान कराने के लिये 'निमित्त पाकर' (इस) शब्द का उपयोग किया जाता है। (—देखो आत्मावलोकन पृ०—२१)।

–ऐसा तीन प्रकारका परिणाम विकार है

(श्री समयसार गाथा ८९ की टीका)

(४)"आत्माके रागादि उत्पन्न होते हैं वे अपने ही अशुद्ध परिणाम हैं। निश्चयसे विचार किया जाये तो अन्य द्रव्य रागादिक का उत्पन्न करनेवाला नही है, अन्य द्रव्य उनका निमित्त मात्र है, क्योकि अन्य द्रव्यके अन्य द्रव्य,गुण पर्याय उत्पन्न नही करते ऐसा नियम है। जो ऐसा मानते हैं (ऐसा एकान्त करते हैं) कि–"पर द्रव्य ही मुझे रागादिक उत्पन्न कराते हैं," वे नय विभागको नही समझते है, वे मिथ्यादृष्टि हैं। यह रागादिक जीवके सत्त्वमे उत्पन्न होते हैं, पर द्रव्य तो निमित्त मात्र है–ऐसा मानना वह सम्यग्ज्ञान है

(श्री समयसार गाथा ३७२ की टीकाका भावार्थ)

(५)" परमार्थसे आत्मा अपने परिणामस्वरूप ऐसे उस भावकर्म का ही कर्ता है — — — परमार्थ से पुद्गल अपने परिणाम स्वरूप ऐसे उस द्रव्यकर्म का ही कर्ता है, परन्तु आत्मा के कर्म स्वरूप भावकर्म का नही।"

—(देखो, प्रवचनसार गा० १२२ की टीका)

(६)" जब तक स्व-परका भेदज्ञान न हो तबतक तो उसे रागादिक का–अपने चेतनरूप भाव कर्मोंका–कर्ता मानो, और भेद-विज्ञान होनेके पश्चात् शुद्ध विज्ञानघन, समस्त कर्तापनेके भावसे रहित एक ज्ञाता ही मानो–इसप्रकार एक ही आत्मामे कर्तापना तथा अकर्तापना-यह दोनो भाव विवक्षावश सिद्ध होते हैं। ऐसा स्याद्वाद मत जैनोका है ऐसा (स्याद्वाद अनुसार) माननेसे पुरुषको ससार–मोक्ष आदिकी सिद्धि होती है,

सर्वथा एकान्त माननेसे सब निश्चय–व्यवहारका लोप होता है।"

(श्री समयसार कलश २०५ भावार्थ)

(७) 'जीव यह विकार अपने दोषसे करता है इसलिये वे स्वकृत हैं, किन्तु उन्हें स्वभाव दृष्टिके पुरुषार्थ द्वारा अपनेमेंसे दूर किया जा सकता है— अशुद्ध निश्चयनयसे यह स्वकृत है और दूर किया जा सकता है इसलिये निश्चयसे यह परकृत है। किन्तु वे परकृतादि नहीं हैं। आते मात्र अपनेमेंसे दूर किये जा सकते हैं इतना ही वे दर्शाते हैं।

(पंचाध्यायी गुजराती उत्तरार्द्ध गा० ७२ का भावार्थ)

"पंचाध्यायी उत्तरार्द्ध" में—इस विकारी भावको गाथा ७९ में तद्गुणाकृति कहा है, गाथा १०५ में 'तद्गुणाकार संक्रान्ति' कहा है, गाथा १३० में "परगुणाकार स्वगुणच्युति" कहा है तथा गाथा २८२ में "स्वरूपच्युति" कहा है। और उन पर्यायोंमें अपना ही दोष है, अन्य किसीका उसमें किंचित् दोष व हस्तक्षेप नहीं है ऐसा बतलानेके लिये उसे गाथा ६० और ७९ में जीव स्वयं

कारण पर्याय अपेक्षासे जीवका स्वतत्त्व है।

"जड कर्मके साथ जीवका अनादि (निमित्त–नैमित्तिक) सबंध है और जीव उसके वश होता है इसलिये विकार होता है; किंतु कर्म के कारण विकार भाव नही होता–ऐसा भी औदयिकभाव सिद्ध करता है।" (देखो मोक्षशास्त्र हिन्दी आवृत्ति पृष्ठ २११)

"कोई निमित्त विकार नही कराता,किन्तु जीव स्वय निमित्ताधीन होकर विकार करता है। जीव जब पारिणामिक भावरूप अपने स्वभावकी ओरका लक्ष करके स्वाधीनता प्रगट करता है तब निमित्ताधीनपना दूर होकर शुद्धता प्रगट होती है-ऐसा औपशमिकभाव साधकदशाका क्षायोपशमिकभाव और क्षायिकभाव–यह तीनो सिद्ध करते हैं।

(देखो,मोक्षशास्त्र हिंदी आवृत्ति अ० २, सूत्र १ की टीका–पृष्ठ२१२)

(९) बन्धका सक्षिप्त स्वरूप ऐसा है कि:—

"रागपरिणाम ही आत्माका कार्य है, वही पुण्य पापरूप द्वैत है, राग परिणामका ही आत्मा कर्ता है, उसीका ग्रहण–त्याग करनेवाला है,–यह शुद्धद्रव्यके निरूपण स्वरूप निश्चयनय है ."

(प्रवचनसार गाथा १८९ की टीका)

(१०) 'मनुष्यादि पर्यायोमे कर्म कही जीवके स्वभावका हनन नहीं करता या उसे आच्छादित नही करता, परन्तु वहाँ जीव स्वय ही अपने दोषसे कर्मानुसार परिणमित होता है, इसलिये उसे अपने स्वभावकी उपलब्धि नही है। जिसप्रकार पानीका प्रवाह प्रदेशकी अपेक्षासे वृक्षोरूप परिणमित होता हुआ अपने प्रवाहीपनेरूप स्वभावको उपलब्ध नही करता–अनुभव नही करता, और स्वादकी अपेक्षासे वृक्षोरूप परिणमित होता हुआ अपने स्वादिष्ट-

पनेरूप स्वभावको उपलब्ध नहीं करता, उसी प्रकार आत्मा भी अपेक्षाकी अपेक्षासे स्व-कर्म अनुसार परिणमित होता हुआ अपने अमूर्तपनेरूप स्वभावको उपलब्ध नहीं करता और भाव की अपेक्षासे स्व-कर्मरूप परिणमित होता हुआ उपरागरहित विशुद्धिवानपनेरूप अपने स्वभावको उपलब्ध नहीं करता। इससे ऐसा निर्धारित होता है कि मनुष्यादि पर्यायोंमें जीवोंको अपने ही दोषसे अपने स्वभावकी अनुपलब्धि है कर्मादिक अन्य किसी कारणसे नहीं। 'कर्म जीवके स्वभावका पराभव करते हैं'— ऐसा कहना तो उपचार कथन है परमार्थसे ऐसा नहीं है।

(श्री प्रवचनसार गाथा ११८ का भावार्थ)

प्रश्न (३६८) —विकारीभाव अहेतुक है या सहेतुक ?

उत्तर—निश्चयसे विकारी भाव अहेतुक है, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अपना परिणमन स्वतंत्ररूपसे करता है किंतु विकारी पर्याय के समय निमित्तका आश्रय होता है इसलिये व्यवहारनयसे वह सहेतुक है। परमार्थसे अन्य द्रव्य अन्य द्रव्यके भाव का कर्ता नहीं होता इसलिये जो चेतनके भाव हैं उनका कर्ता चेतन ही होता है। इस जीवको अज्ञानसे जो मिथ्यात्वादि भावरूप परिणाम हैं वे चेतन हैं जड़ नहीं हैं अशुद्ध निश्चयनय से उन्हें चिदाभास भी कहा जाता है। इसप्रकार वे परिणाम चेतन होनेसे उनका कर्ता भी चेतन ही है क्योंकि चेतन कर्म का कर्ता चेतन ही होता है—यह परमार्थ है। अभेद दृष्टिमें तो जीव शुद्ध चेतनामात्र ही है, परन्तु जब वह कर्मके निमित्तसे परिणमित होता है, तब उन-उन परिणामोंसे युक्त होता है और तब परिणाम-परिणामीकी भेद दृष्टिमें अपने अज्ञान

भावरूप परिणामोका कर्ता जीव ही है। अभेद दृष्टिमे तो कर्ता कर्म भाव ही नही है, शुद्ध चेतनामात्र जीववस्तु है.."

(श्री समयसार गाथा ३२८ से ३३१ का भावार्थ)

[अधिक स्पष्टीकरणके लिये देखिये, अगले प्रश्नका उत्तर]

पुनश्च, दूसरे प्रकारसे देखने पर आत्मा स्वतन्त्ररूपसे विकार करता है इसलिये वह अपना हेतु है, इसलिये उस अपेक्षा से वह सहेतुक है, और पर उसका सच्चा हेतु नही है, इसलिये उस अपेक्षासे अहेतुक है।

प्रश्न (३७९)—एक जीव दूसरे जीवका घात कर सकता है ?

उत्तर—नही, क्योकि—

(१) अस्तित्वगुणके कारण किसी जीव या पदार्थका कभी नाश नही होता, इसलिये कोई किसीको मार या जिला नही सकता।

(२) सयोगरूप जड शरीर भी स्वतत्र पुद्गल द्रव्य है, उसका भी कोई नाश नही कर सकता।

(३) जिस शरीरका वियोग हो उसका व्यवहारसे घात (नाश) कहलाता है। जीव और शरीरका वियोग अपनी—अपनी योग्यतासे होता है; उसमे आयुकर्म पूरा हुआ वह निमित्त है।

(४) घात करनेवाला जीव दूसरेका घात करनेका कषायभाव करके अपने शुद्ध चैतन्यभावका ही मात्र घात कर सकता है, अन्य कुछ नही कर सकता।

(५) परमार्थसे कोई द्रव्य किसीका कर्ता हर्ता नही हो सकता।

(—प्रवचनसार गाथा १६ भावार्थ)

(६) जगतमे छहोंद्रव्य नित्यस्थिर रहकर प्रतिसमय अपनी अवस्थाका उत्पाद—व्यय करते रहते हैं, —इसप्रकार अनन्त जड-चेतन द्रव्य

एक-दूसरेसे स्वतंत्र हैं, इसलिये वास्तवमें किसीका नाश नहीं होता, कोई नया उत्पन्न नहीं होता, और न दूसरे उनकी रक्षा कर सकते हैं, अर्थात् इस जगतमें कोई परको उत्पन्न करनेवाला परकी रक्षा करनेवाला या विनाश करनेवाला है ही नहीं।

(७) —जीव पर जीवोंको सुखी-दुःखी आदि करनेकी बुद्धि करता है परन्तु पर जीव तो अपने करनेसे सुखी-दुःखी नहीं होते इसलिये वह बुद्धि निरर्थक होनेसे मिथ्या है—झूठी है।"

(श्री समयसार गाथा २६६ का भावार्थ)

प्रश्न (१७०)–रोगके कारण दुःख और उसके अभावमें सुख होता है—ऐसी मान्यतामें सत्यासत्यता क्या है?

उत्तर—रोग शरीरकी अवस्था है। शरीर तो पुद्गल जड़ है उसे सुख-दुःख होता ही नहीं। जीव अपने अज्ञानपनेसे शरीरमें एकत्व बुद्धि करे तो उसे सुख-दुःख मालूम होता है और सच्चे ज्ञान द्वारा परमें एकत्व बुद्धि न करे तो उसे सुख-दुःखकी वृत्ति उत्पन्न न हो।

ज्ञानी शरीरकी रोगग्रस्त दशाके कारण अपनेको किञ्चित् दुःख नहीं मानते। उन्हें अपनी सहनशक्तिकी निर्बलतासे अल्प दुःख होता है किन्तु वह गौण है क्योंकि वे दुःखके स्वामी नहीं बनते। अपने ध्रुव स्वभावकी दृष्टिके बलसे उनके राग-द्वेष दूर होता जाता है और ज्यों-ज्यों कषायका अभाव होता जाता है त्यों त्यों उन्हें सुखका अनुभव निरन्तर वर्तता रहता है।

—सुखी-दुःखी होना इच्छानुसार समझना किन्तु

बाह्य कारणोके आधीन नही. .इच्छा होती है वह मिथ्यात्व, अज्ञान और असयमसे होती है तथा इच्छामात्र आकुलता-मय है और आकुलता ही दु ख है मोहके सर्वथा अभावसे जब इच्छाका सर्वथा अभाव हो तब सर्व दु ख दूर होकर सत्य सुख प्रगट होता है ।"

देखो, मोक्षमार्ग प्रकाशक गुजराती आवृत्ति पृष्ठ ७५–७६)

न (३७१)–क्या जीव कर्मके उदय अनुसार विकार करता है ?

तर—नही, क्योकि —

१–"मोहकर्मका विपाक होने पर जीव जिसप्रकारका विकार करे तदनुसार जीवने फल भोगा कहलाता है । उसका अर्थ इतना है कि जीवको विकार करनेमे मोह कर्मका विपाक निमित्त है । कर्मका विपाक कर्ममे होता है जीवमे नही होता । जीवको अपने विभावभावका अनुभव हो वह जीवका विपाकअनुभव है ।"

(गुजराती मोक्षशास्त्र अ० ८, सूत्र २१ टीका)

२–" 'औदयिकभाव' मे सर्व औदयिकभाव बन्धके कारण हैं–ऐसा नहो समझना चाहिये, किन्तु मात्र मिथ्यात्व, असयम,कषाय और योग–यह चार भाव बन्धके कारण हैं–ऐसा जानना ।" (श्री धवला पुस्तक ७, पृष्ठ ९–१०)

३–"औदयिका भावा बन्धकारणम्"–इसका अर्थ इतना ही है कि यदि जीव मोहके उदयमे युक्त हो तो बन्ध होता है । **द्रव्यमोहका उदय होने पर भी यदि जीव शुद्धात्म भावना के बल द्वारा भावमोहरूप परिणमित न हो तो बन्ध नहीं होता ।** यदि जीवको कर्मके उदय मात्रसे बन्ध होता हो

तो संसारीको सर्वदा कर्मके उदयकी विद्यमानतासे सर्वदा बन्ध ही होता रहे, कभी मोक्ष होगा ही नहीं, इसलिये ऐसा समझना कि कर्मका उदय बन्धका कारण नहीं है किन्तु जीवका भावमोहरूप परिणमन होना ही बन्धका कारण है।

(प्रवचनसार (हिन्दी) पृष्ठ ५८–५९ श्री जयसेनाचार्यकृत गाथा ४५ की टीका)

४–तेषां जीवगतरागादि भावप्रत्ययानामभावे, द्रव्यप्रत्ययेषु विद्यमानेष्वपि सर्वेष्टानिष्टविषयममत्वा भावपरिणता जीवा न बध्यन्त इति। तथाहि–यदि जीवगतरागाद्यभावेऽपि द्रव्यप्रत्ययोदयमात्रेण बंधो भवति तर्हि सर्वदैव बन्ध एव। कस्मात्। संसारिणां सर्वदैव कर्मोदयस्य विद्यमानत्वादिति।

अर्थ–द्रव्यास्रव विद्यमान होने पर भी जीवके रागादि भावास्रव के अभावसे सर्व इष्ट–अनिष्ट विषयोंमें (ममत्वभावरूप) परिणमित न होनेवाले जीव बँधते नहीं हैं और यदि जीवको रागादि का अभाव होने पर भी द्रव्यास्रवके उदयमात्रसे बन्ध हो तो संसारी जीवोंको सर्वदा ही कर्मोंका उदय होनेसे, सर्वदा बन्ध ही हो। (श्री पंचास्तिकाय गाथा १४९ की जयसेनाचार्य कृत टीका)।

––ज्ञानीको यदि पूर्वबद्ध द्रव्यप्रत्यय विद्यमान है तो भले हों तथापि वे (ज्ञानी) तो निरास्रव ही है क्योंकि कर्मोदयका कार्य जो राग–द्वेष मोहरूप आस्रवभाव उसके अभावमें द्रव्यप्रत्यय बन्धके कारण नहीं हैं (जिसप्रकार पुरुष को रागभाव हो तभी यौवन प्राप्त स्त्री उसे वश कर सकती है उसी प्रकार जीवको भास्रवभाव हो तभी उदयप्राप्त द्रव्य

प्रत्यय नवीन वन्ध कर सकते हैं।"

(श्री समयसार गाथा १७३ से १७६ की टीका)

६—इससे सिद्ध होता है कि-कर्मोदय जीवको विकार कराता है अर्थात् कर्मोका जैसा उदय हो तदनुसार जीवको विकार करना पडता है—ऐसा नही है। जीव अपनी अज्ञानतावश कर्मोदयमे युक्त हो, तभी वह कर्मोदय अपने विकारमे निमित्तभूत कहलाता है, किन्तु यदि वह अपने आत्मस्वरूपमे स्थिर होकर कर्मोदयमे युक्त न हो तो वह कर्मोदय उसमे विकारका निमित्त नही होगा और न कर्मके नवीन वन्धका निमित्त कारण वनेगा, किन्तु निर्जराका कारण होगा।

७—" यह अविद्या तेरी ही फैलाई हुई है; तू अविद्यारूप कर्ममे न पडकर स्व—को युक्त न करे तो जडका (कर्मका) कोई जोर नही है।"

(श्री दीपचदजीकृत अनुभवप्रकाश गुजराती आवृत्ति पृ० ३७)

८—अज्ञानी जीव रागद्वेषकी उत्पत्ति परद्रव्य (कर्मादि) से मानकर परद्रव्य पर कोप करता है कि—"यह परद्रव्य मुझे राग-द्वेष उत्पन्न करते हैं, उन्हे दूर करूँ।"—ऐसे अज्ञानी जीव को समझानेके लिये आचार्यदेव उपदेश देते हैं कि—राग—द्वेष की उत्पत्ति अज्ञानसे आत्मामे ही होती है और वे आत्माके ही अशुद्धपरिणाम हैं, इसलिये उस अज्ञानका नाश करो, सम्यग्ज्ञान प्रगट करो, **आत्मा ज्ञानस्वरूप है—ऐसा अनुभव करो;** परद्रव्यको राग—द्वेष उत्पन्न करनेवाला मानकर उस पर कोप न करो।" (श्री समयसार कलश २२० का भावार्थ)

९—कर्मका उदय जीवको कोई असर नही कर सकता-

यह बात भी समयसार नाटकके सर्वविशुद्धि द्वारमें निम्नानुसार समझाई है —

> कोउ शिष्य कहै स्वामी रागदोष परिनाम
> ताको मूल प्रेरक कहहु तुम कौन है
> पुग्गल करम जोग किधौं इन्द्रिनिकौ भोग
> किधौं धन किधौं परिजन किधौं भौन है ? "

अर्थ—शिष्य पूछता है कि हे स्वामी ! राग-द्वेष परिणामों का मूल प्रेरक कौन है वह आप कहिये। (क्या वह) पौद्गलिक कर्म है ? योग (मन-वचन-कायकी क्रिया) है इंद्रियोंका भोग है ? धन है ? परिजन है ? या मकान है ?

> गुरु कहैं छहों दर्व अपने अपने रूप
> सबनिको सदा असहाई परिनौन है
> कोउ दरब काहुको न प्रेरक कदाचि तातै
> रागदोष मोह मृषा मदिरा अचौन है।

अर्थ—गुरु समाधान करते हैं कि छहों द्रव्य अपने-अपने स्वरूप में सदैव असहाय परिणमन करते हैं इसलिये किसी द्रव्य किसी द्रव्य की परिणतिके लिये कभी भी प्रेरक नहीं होते इसलिये राग-द्वेष का मूल कारण मोह मिथ्यात्वका मदिरा पान है।

(देखो समयसार नाटक पृष्ठ ३५१-३५२)

१०—भावकर्मका कर्ता अज्ञानी जीव ही है—ऐसा श्री आचार्य देव समयसार में युक्ति द्वारा निम्नानुसार सिद्ध करते हैं—

यदि मिथ्यात्व नामकी (मोहनीय कर्मकी) प्रकृति आत्मा को मिथ्यादृष्टि बनाती है—ऐसा माना जाये तो तेरे मत में अचेतन

प्रकृति (मिथ्यात्वभावकी) कर्ता हुई। (इसलिये मिथ्यात्व भाव अचेतन सिद्ध हुआ।)" (समयसार गाथा–३२८)

"अथवा, यह जीव पुद्गल द्रव्यके मिथ्यात्वको करता है–ऐसा माना जाये तो पुद्गल द्रव्य मिथ्यादृष्टि सिद्ध होगा।–जीव नही!"

(गाथा ३२९)

"अथवा यदि जीव और प्रकृति–दोनो पुद्गलद्रव्यके मिथ्यात्व भावरूप करते हैं—ऐसा माना जाये तो, जो दोनो द्वारा किया गया उसका फल दोनो भोगेंगे। (गाथा ३३०)

"अथवा यदि पुद्गल द्रव्यको मिथ्यात्वभावरूप न तो प्रकृति करती है या न तो जीव करता है (दोमेसे कोई नही करता) –ऐसा माना जाये तो पुद्गलद्रव्य स्वभावसे ही मिथ्यात्वभावरूप सिद्ध होगा। वह क्या वास्तवमे मिथ्या नही है?"

(गाथा ३३१)

११–जीवने ही अपनी अज्ञानतासे भूल की है, उसमे बेचारा कर्म क्या करे? कहा है कि—

*"कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई,
अग्नि सहे घनघात लोहकी सगति पाई।"

अर्थ –कर्म बेचारा कौन? (किस गिनतीमे?) भूल तो मेरी

---

*"भद्राणामपि नश्यन्ति गुणा येषा ससर्ग खलैः।
वैश्वानरो लोहेन मिलित तेन पिट्टयते घनै ॥ ११० ॥

अर्थ —दुष्टों (कर्म) के साथ जिनका सम्बन्ध है, उन भद्र (विवेकी) पुरुषोंके भी गुण नष्ट हो जाते हैं, जैसे अग्नि लोहेके साथ मिलती है तब वह घनोंसे पीटी जाती है—कूटी जाती है।"

(देखो, परमात्म प्रकाश अ० २–श्लोक ११०)

ही बढ़ी है। जिसप्रकार अग्नि लोहेकी संगति करती है सो उसे घनों के आघात सहना पड़ते हैं, (उसीप्रकार यदि जीव कर्मोदयमें युक्त हो तो उसे राग-द्वेष आदि विकार होते हैं)

१२—"...और तत्त्व निर्णय करनेमें कहीं कर्मका दोष तो है नहीं किन्तु तेरा ही दोष है। तू स्वयं तो महन्त रहना चाहता है और अपना दोष कर्मादिकमें लगाता है। परन्तु जिन आज्ञा माने तो ऐसी अनीति संभव न हो। तुझे विषय-कषायरूप ही रहना है इस-लिये झूठ बोलता है। यदि मोक्षकी सच्ची अभिलाषा हो तो तू ऐसी युक्ति क्यों बनाये ?..."

(मोक्षमार्ग प्रकाशक अ० ९ देहलीसे प्रकाशित पृष्ठ ४५८)

१३— कर्म खलु...स्वयमेव षट्कारकीरूपेण व्यवतिष्ठमानं न कारकान्तरमपेक्षते । एवं जीव....स्वयमेव षट्कारकीरूपेण व्यवतिष्ठमानो न कारकान्तरमपेक्षते । अतः कर्मणः कर्तुर्नास्ति जीवः कर्ता जीवस्य कर्तुर्नास्ति कर्म कर्तृ निश्चयेनेति ।

अर्थ—कर्म वास्तव में...स्वयं ही षट्कारकरूप परिणमित होता है इसलिये अन्य कारकों (अन्यके षट् कारकों) की अपेक्षा नहीं रखता। उसीप्रकार जीव...स्वयं ही षट् कारकरूपसे परिणमित होता है इसलिये अन्यके षट्कारकोंकी अपेक्षा नहीं रखता इसलिये निश्चयसे कर्मका कर्ता जीव नहीं है और जीवका कर्ता कर्म नहीं है।

भावार्थ—निश्चयसे पुद्गल द्रव्य ज्ञानावरणादि कर्म योग्य पुद्गल स्कन्धोंरूप परिणमित होता है और जीव द्रव्य भी अपने औदयिकादि भावोंरूपसे स्वयं परिणमित होता है। जीव और पुद्गल—दोनों एक-दूसरेके कर्तव्यकी अपेक्षा नहीं रखते।

(—श्री पंचास्तिकाय गाथा ६२ की संस्कृत टीका)

प्रश्न (३७२)–आत्मा अपनी योग्यतासे ही राग (विकार) करता है,–ऐसा माननेसे तो विकार आत्माका स्वभाव हो जायेगा, इसलिये रागादिक विकारको कर्मकृत मानना चाहिये—यह ठीक है ?

उत्तर—विकार आत्म द्रव्यका त्रिकाली स्वभाव नही है; किंतु क्षणिक योग्यतारूप पर्याय स्वभाव है। वर्तमान पर्यायमे स्वको चूककर परद्रव्यका अवलम्बन किया जाये तो पर्यायमे नया–नया विकार होता है; किंतु यदि स्वसन्मुखता की जाये तो वह दूर हो सकता है। जीव रागद्वेषरूप विकार पर्यायमे स्वय करता है, इसलिये अशुद्ध निश्चयनयसे वह जीवका है। स्वभावमे विकार नही है। स्वभावमे लीन होनेसे वह विकार दूर हो जाता है। विकारी पर्याय अपनी है इसलिये निश्चय कहा है, लेकिन विकार अपना स्थायी और असली स्वरूप नही है इसलिये वह अशुद्ध है। इसलिये अशुद्ध निश्चयनयसे वह जीवकृत है–ऐसा कहा है।

प्रश्न (३७३) कभी-कभी जीव पर जड कर्मका जोर बढ जाता है और कभी जड कर्म पर जीवका जोर बढ जाता है–यह ठीक है?

उत्तर—(१) नही, यह मान्यता यथार्थ नही है, क्योकि जीव और जडकर्म–यह दो पदार्थ त्रिकाल भिन्न–भिन्न हैं, उनका परस्पर अत्यन्त अभाव है, इसलिये कोई किसी पर जोर नही चलाता।
(२) जीव जब विपरीत पुरुषार्थ करे तब वह अपनी विपरीत वृत्तिको कर्ममे युक्त करता है, उस अपेक्षासे कर्मका जोर आरोपसे कहा जाता है, और जब जीव अपने योग्य स्वभावमे सावधान होकर सीधा पुरुषार्थ करता है तब वह अपना बल अपनेमे बढाता हुआ, कर्मकी ओरकी वृत्ति क्रमश छोडता जाता है, इसलिये ऐसा कहा जाता है कि जीव बलवान हुआ।

(३) प्रत्येक द्रव्यका बल और शक्ति उसके स्वद्रव्यमें है। कर्म की शक्ति जीवमें नहीं आ सकती इसलिये कर्म जीवको कभी भी आधीन नहीं कर सकता।

प्रश्न (१७४)—इन्द्रियोंके विषय भी आत्माको सुख-दुःख नहीं दे सकते उसका कारण क्या?

उत्तर—(१) 'स्पर्शनादिक इन्द्रियाँ जिनका आश्रय करती हैं—ऐसे इष्ट विषयोंको प्राप्त करके (अपने अशुद्ध) स्वभावरूप परिण मित होता हुआ आत्मा स्वयमेव सुखरूप (इन्द्रिय सुखरूप) होता है देह सुखरूप नहीं होती है।

(श्री प्रवचनसार गाथा ६५ अन्वयार्थ)

(२) "शरीर सुख-दुःख नहीं करता। देवका उत्तम वैक्रियिक शरीर सुखका कारण नहीं है या नारकीका शरीर दुःखका कारण नहीं है। आत्मा स्वयं ही इष्ट अनिष्ट विषयोंके वश होकर सुख-दुःखकी कल्पनारूप परिणमित होता है।"

(श्री प्रवचनसार गाथा ६६ भावार्थ)

(३) 'संसारमें या मोक्षमें आत्मा अपने आप ही सुखरूप परि णमित होता है उसमें विषय अकिंचित्कर है अर्थात् कुछ नहीं करते। अज्ञानी जन विषयोंको सुखका कारण मानकर व्यर्थ ही उनका अवलम्बन करते हैं।"

(श्री प्रवचनसार गाथा ६७ का भावार्थ)

(४) स्व-परके भेदज्ञानके अभावसे अज्ञानी जीव परमें (इन्द्रिय विषयोंमें) सुख-दुःखी मिथ्या कल्पना करके उनमें इष्ट-अनिष्ट की बुद्धि करके अपनेको सुखी-दुःखी मानता है, किन्तु विषय तो पर हैं वे इष्ट अनिष्ट हैं ही नहीं और वस्तुस्वभाव ही ऐसा

है कि एक द्रव्य दूसरेका कुछ नही कर सकता।

(५) " इसप्रकार पदार्थोंमे तो इष्ट–अनिष्टपना है नही। यदि पदार्थोंमे इष्ट–अनिष्टपना हो तो जो पदार्थ इष्टरूप हो वह सबको इष्टरूप ही होगा, और जो अनिष्टरूप हो वह सबको अनिष्टरूप ही होगा, किन्तु ऐसा तो नही होता, मात्र यह जीव स्वय ही कल्पना करके उसे इष्ट-अनिष्टरूप मानता है, परन्तु वह कल्पना मिथ्या है।"

(मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ १५६ देहलीसे प्रकाशित)

प्रश्न (३७५)—क्या निमित्तके बलसे या प्रेरणासे कार्य होता है ?

उत्तर—(१) नही, बात यह है कि जिसप्रकार कोई भी कार्य अन्यके आधीन नही है, और वह (कार्य अन्यकी) बुद्धि अथवा प्रयत्नके भी आधीन नही है, क्योकि कार्य तो अपनी परिणमन शक्तिसे ही होता है। यदि उसका बुद्धि और प्रयत्नके साथ मेल बैठ गया तो (अज्ञानी) ऐसा मानता है कि यह कार्य बुद्धि और प्रयत्नसे हुआ है, और यदि उसका अन्य बाह्य निमित्तोके साथ मेल बैठ गया तो (अज्ञानी) ऐसा समझता है कि यह कार्य निमित्तसे हुआ है, परन्तु तात्त्विक दृष्टिसे देखें तो प्रत्येक कार्य अपनी–अपनी योग्यतासे ही होता है, क्योकि उसके अन्वय और व्यतिरेक भी उसके साथ होते हैं, इसलिये निमित्तको किसी भी अवस्थामे प्रेरक–कारण मानना उचित नही है।

[प० श्री फूलचन्दजी सम्पादित, श्री तत्त्वार्थसूत्र पृष्ठ २५१]

(२) "जिसप्रकार शख परद्रव्यको भोगता–खाता है, फिर भी उसकी श्वेतता पर द्वारा कृष्ण नही की जासकती क्योकि पर अर्थात् परद्रव्य किसी द्रव्यको परभावस्वरूप करनेका निमित्त

(निमित्त कारण) नहीं बन सकता..

(श्री समयसार गा० ३२० से ३२१ की पु० टीका)

प्रश्न (१७६)–ज्ञानी–धर्मात्मा पर जीवोंका भला करनेके लिये उपदेश देते हैं–यह विधान बराबर है ?

उत्तर—नहीं यह बात बराबर नहीं है क्योंकि ज्ञानी जानते हैं कि कोई जीव पर आत्माका भला बुरा नहीं कर सकता। सामने वाला जीव अपनी योग्यतासे (सत्य समझनेके प्रयत्न द्वारा) समझे तो उपदेशको निमित्त कहा जाता है।

छद्मस्थ ज्ञानीको अपनी निर्बलताके कारण उपदेश देने का विकल्प उठता है और वाणी वाणीके कारण निकलती है उसमें उपदेशका विकल्प (राग) तो निमित्तमात्र है। ज्ञानी राग और वाणीका स्वामी नहीं है, किन्तु राग और वाणीका व्यवहारसे ज्ञाता है।

प्रश्न (१७७) पुद्गल जीवको विकाररूप परिणमित कराता है–यह बात ठीक है ?

उत्तर—(१) नहीं 'ऐसा तो कभी नहीं होता क्योंकि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यकी परिणतिका कर्ता नहीं होता।

–(आत्मावलोकन ' पृ०–४६)

(२) 'कोई द्रव्य किसी द्रव्यको परिणमित नहीं करता क्योंकि कोई द्रव्य नि-परिणामी (अपरिणामी) नहीं है–सर्व द्रव्य परिणामी हैं...''

—(आत्मावलोकन पृ०–७४)

प्रश्न (१७८)– 'कोई ऐसा जाने कि चिद्विकाररूप तो जीव परिण मित होता है किन्तु ऐसा होनेमें (परिणमित होनेमें) पुद्

गल स्वय निमित्तकर्ता होता है, अर्थात् यह जीव विकाररूप परिणमित हो उसके लिये पुद्गल स्वय निमित्तकर्ता होकर वर्तता है–यह ठीक है ?"

उत्तर—नही; "ऐसा तो कभी नही हो सकता, क्योकि—

(१) यदि पुद्गल वह चिद्विकार होनेमे जान–बूझकर स्वय कर्म निमित्तरूप हो, तो वह ज्ञानवन्त हुआ। वह तो अनर्थ उत्पन्न हुआ। जो अचेतन था वह चेतन होगया। यह एक दूषण।

(२) यदि जीवको विकार होनेमे पुद्गल कर्मत्वरूपसे निमित्त होता ही रहे, तो यह दूषण उत्पन्न हो कि–कोई द्रव्य किसी द्रव्यका शत्रु नही है, तथापि यहाँ पुद्गल जीवका शत्रु हुआ"

(आत्मावलोकन पृष्ठ ४६–४७)

प्रकरण छठवाँ

उपादान-निमित्त अधिकार तथा निमित्त-नैमित्तिक अधिकार

प्रश्न (२७९)—कार्य किसप्रकार होता है ?

उत्तर— 'कारणानुविधायित्वादेव कार्याणि ।

(समयसार गाथा ११०-१११ टीका)

'कारणानुविधायीनि कार्याणि ।"(समयसार गाथा १८ टीका) कारणका अनुसरण करके ही कार्य होते हैं। कार्यको कर्म अवस्था पर्याय हालत दशा परिणाम और परिणति भी कहते हैं।

(यहाँ कारणको उपादान कारण समझना क्योंकि उपादान कारण ही सच्चा कारण है।)

प्रश्न (२८०)—कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—कार्य की उत्पादक सामग्रीको कारण कहते हैं ?

प्रश्न (२८१)—उत्पादक सामग्रीके कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—उपादान और निमित्त। उपादानको निजशक्ति अथवा निश्चय कहते है और निमित्तको परयोग अथवा व्यवहार कहते हैं।

प्रश्न (२८२)—उपादान कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) जो द्रव्य स्वयं कार्यरूप परिणमित हो उसे उपादान

कारण कहते हैं, जैसें कि–घडेकी उत्पत्तिमें मिट्टी उसका **त्रिकाली उपादान कारण है;** (द्रव्यार्थिक नयसे है ।)

–(२) अनादिकालसे द्रव्यमे जो पर्यायोका प्रवाह चला आरहा है उसमे **अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय** उपादान कारण है और **अनन्तर उत्तर क्षणवर्ती पर्याय** कार्य है, जैसे कि–मिट्टीका घडा होनेमें मिट्टीका पिण्ड वह घड़ेकी अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय है और घडारूप कार्य वह पिन्डकी अनन्तर उत्तर क्षणवर्ती पर्याय है। अनन्तर पूर्व **क्षणवर्ती पर्याय** का व्यय वह क्षणिक उपादान कारण कहा जाता है। (पर्यायार्थिक नयसे है।)

(३) उस समयकी पर्यायकी योग्यता वह उपादान कारण है और वही पर्याय कार्य है। उपादान ही सच्चा (वास्तविक) कारण (पर्यायार्थिकनयसे) है।

[आधार—ध्रुवउपादान तथा क्षणिकउपादानके लिये देखो—(१) अष्टसहस्री श्लोक ५८, टीका, पृष्ठ २१० ,(२) चिद्विलास पृष्ठ ३६, (३) ज्ञान दर्पण पृष्ठ २५–४०–५६]

प्रश्न (३८३)–योग्यता किसे कहते हैं ?

उत्तर—"योग्यतैव विषयप्रतिनियमकारणमिति"

(न्याय दीपिका, पृष्ठ २७)

१–योग्र्यता ही विषयका प्रतिनियामक कारण है। [यह कथन ज्ञानकी योग्यता (सामर्थ्य) को लेकर है, परन्तु योग्यताका कारणपना सर्वमे सर्वत्र समान है।]

२–सामर्थ्य, शक्ति, पात्रता, लियाकत, ताकत, योग्यता, शक्ति- यह "योग्यता" शब्दके अर्थ हैं ?

प्रश्न (३८४)–निमित्त कारण किसें कहने हैं ?

उत्तर—जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप परिणमित न हो परन्तु कार्यकी उत्पत्तिमें अनुकूल होनेका जिसपर आरोप आ सके उस पदार्थ को निमित्त कारण कहते हैं जैसे कि—घड़की उत्पत्तिमें कुम्भकार, दंड चक्र आदि निमित्त कारण हैं। [निमित्त सच्चा कारण नहीं है वह अकारणवत्—अहेतुवत्* है, क्योंकि वह उपचारमात्र अथवा व्यवहार कारण है।]

प्रश्न (१८५)—निमित्तकारणके कितने भेद हैं?

उत्तर—दो भेद हैं—(१) प्रेरक निमित्त और (२) उदासीन निमित्त।

प्रश्न (१८६)—प्रेरक निमित्त किसे कहते हैं?

उत्तर—गमन क्रियावाले जीव पुद्गल तथा इच्छादिवाले जीव प्रेरक निमित्त कहलाते हैं। प्रेरक निमित्त जबरन् उपादानमें कार्य कर देते हैं या प्रभावादि डाल सकते हैं-ऐसा नहीं समझना क्योंकि दोनों पदार्थोंका एक दूसरेमें अभाव है। प्रेरक निमित्त उपादानको प्रेरणा नहीं करता।

प्रश्न (१८७)—उदासीन निमित्त किसे कहते हैं?

उत्तर—धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आकाश और कालादि निष्क्रिय (गमन क्रिया रहित) या रागरहित द्रव्योंको उदासीन निमित्त कहते हैं।

[निमित्तोंके उपभेद बतानेके लिये किन्हीं निमित्तोंको प्रेरक और किन्हींको उदासीन कहा जाता है किन्तु सर्वप्रकार के निमित्त उपादानके लिये तो धर्मास्तिकायवत् उदासीन ही है। निमित्तके भिन्न-भिन्न प्रकारोंका ज्ञान करानेके लिये ही उनके यह दो भेद किये गये हैं।]

---

* पंचाध्यायी भाग-२, गाथा ३५१

प्रश्न(३८८)–"कुम्हारने चाक, दड आदिसे घडा बनाया;' उसमे घडारूप कार्यमे (१) त्रिकाली और क्षणिक उपादानकारण कौन हैं ? (२) उदासीन और प्रेरक निमित्त कौनसे हैं ?

उत्तर—(१) त्रिकाली उपादान कारण मिट्टी, और घडारूप कार्य की अनतर पूर्ववर्ती पर्याय–मिट्टीके पिण्डका अभाव(व्यय)तथा घडारूप होनेकी वर्तमान पर्यायकी योग्यता–यह दोनो क्षणिक उपादान हैं ?

(२) घडा बनानेके रागवाला कुम्हार और क्रियावान् चाक, दडादि प्रेरक निमित्त हैं।

चाककी कीली, काल, आकाश, धर्म अधर्म आदि उदासीन निमित्त हैं, क्योकि वे गमनक्रिया रहित और राग (इच्छा) रहित हैं।

प्रश्न (३८९)–उदासीन निमित्त उपादानमे कुछ नही कर सकते, परन्तु प्रेरक निमित्त तो कुछ कार्य प्रभाव असर तो करते होगे ?

उत्तर—नही, उदासीन या प्रेरक निमित्त उपादानमे कुछ करते ही नही क्योकि परके लिये सभी निमित्त उदासीन ही हैं। श्री पूज्यपाद आचार्य **इष्टोपदेश** की ३५ वी गाथा मे कहते हैं कि –

"नाज्ञो विज्ञत्वमायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।
निमित्तमात्रमन्यस्तु, गतेर्धर्मास्तिकायवत्" ।।३५।।

अर्थ—अज्ञानी विशेष प्रकारके ज्ञान भावको प्राप्त नही करता और विशेष ज्ञानी अज्ञानपनेको प्राप्त नही करता। गतिको जिस-प्रकार धर्मास्तिकाय निमित्त है उसी प्रकार अन्य तो निमित्तमात्र है।

भावार्थ–"तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तिके लिये अयोग्य अभव्यादि

जीव धर्माचार्यादिकोंके हजारों उपदेशोंसे भी तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते।

"कार्यकी उत्पत्ति करनेके लिये कोई भी प्रयत्न स्वाभाविक गुणकी अपेक्षा करता रहता है। सैकड़ों व्यापारोंसे (प्रयत्नोंसे) भी बगुलेको तोतेकी भाँति नहीं पढ़ाया जा सकता।

यहाँ शंका यह होती है कि-ऐसे तो बाह्य निमित्तोंका निरा करण ही हो जायेगा। इस विषयमें उत्तर यह है कि-अन्य जो गुरु आदिक तथा शत्रु आदिक हैं वे प्रकृत कार्यके उत्पादनमें तथा विध्वंसन (नाश) में सिर्फ निमित्तमात्र हैं। वास्तवमें कोई कार्य होनेमें या बिगड़नेमें उसकी योग्यता ही साक्षात् साधक होती है"

(परम श्रुतप्रभावक मंडल मुंबईसे प्रकाशित—इष्टोपदेश गाथा ३५ की टीका—पृष्ठ ४२-४३)

प्रश्न (११०)—कभी-कभी प्रेरक निमित्त जैसे कि शीघ्र गति करती मोटर ट्रेन आदि द्वारा अनिश्चित स्थानमें गति आदि देखे जाते हैं इसलिये उपादानको प्रेरक निमित्तोंके आधीन परिण मित होना पड़ता है—यह ठीक है?

उत्तर—नहीं किसी भी प्रेरक निमित्तोंके आधीन उपादानको परिणमित होना पड़ता है—ऐसा नहीं है परन्तु इतना निश्चित होता है कि—गति क्रिया जीवकी इच्छानुसार नहीं हो सकी। वास्तविक रीतिसे देखा जाय तो शरीर और जीवकी क्रियावती शक्तिकी उस समयकी योग्यता ही वैसी थी इसलिये तदनुसार गति हुई।

प्रश्न (१११)—शीघ्र गति करती मोटरादि तो उसमें निमित्तमात्र हैं

किन्तु पुद्गल कर्म, मन वचन काय, इन्द्रियोका भोग, धन, परिजन, मकान इत्यादि जीवको राग–द्वेपरूप परिणाम करने मे प्रेरक हैं ?

उत्तर—छहो द्रव्य सर्व–अपने–अपने स्वरूपसे सदैव असहाय (स्व-तत्र) परिणमन करते है, कोई द्रव्य किसीका प्रेरक कभी नही है, इसलिये **कोई भी परद्रव्य रागद्वेपका प्रेरक नहीं है;** परन्तु जीवका मिथ्यात्व मोहरूप भाव है वही (अनन्तानुवन्धी) राग–द्वेपका कारण है।

[देखो, प्रकरण ५, प्रश्न ३७१ का उत्तर]

प्रश्न (३९२)–पुद्गलकर्मकी वलजवरीसे जीवको राग–द्वेप करना पडता है, पुद्गलद्रव्य कर्मोका वेप धारण करके जहाँ–जहाँ वल करता है वहाँ–वहाँ जीवको राग–द्वेप अधिक होते हैं-यह वात सत्य है ?

उत्तर—नही, क्योकि जगतमे पुद्गलका सग तो सदैव रहता है। यदि उसकी वलजवरीसे जीवको रागादि विकार हो, तो शुद्ध भावरूप होनेका कभी अवसर ही नही आ सकेगा, इसलिये ऐसा समझना चाहिये कि शुद्ध या अशुद्ध परिणमन करनेमे चेतन स्वय समर्थ है।

(समयसार नाटक सर्व विशुद्ध द्वार, कवित्त ६१ से ६६)

प्रश्न (३९३)—निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर—जव उपादान स्वय स्वत कार्यरूप परिणमित होता है तव **भावरूप या अभावरूप** किस उचित (योग्य) निमित्तकारणका उसके साथ सम्बन्ध है वह वतलानेके लिये उस कार्यको

नैमित्तिक कहते हैं। इसप्रकार भिन्न-भिन्न पदार्थोंके स्वतंत्र सम्बन्धको निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध कहते हैं।

निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध परस्परकी परतंत्रताका सूचक नहीं है परन्तु नैमित्तिकके साथ कौन निमित्तरूप पदार्थ है उसका वह ज्ञान कराता है।

जिस कार्यको निमित्तकी अपेक्षासे नैमित्तिक कहा है उसे अपने उपादानकी अपेक्षासे उपादेय भी कहते हैं।

(१) निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध दोनों स्वतंत्र पर्यायोंके बीच होता है।

(२) निमित्त और नैमित्तिकका स्वचतुष्टय (द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव) भिन्न-भिन्न है।

(३) उपादान-उपादेय सम्बन्ध एकही पदार्थको लागू होता है

(४) कार्यकी निमित्त द्वारा पहिचान कराते हुए वह नैमित्तिक कहलाता है और उसी कार्यकी उपादान द्वारा पहिचान कराते हुए वह उपादेय कहलाता है।

प्रश्न (३६४) प्रेरक निमित्त और उदासीन निमित्तके दृष्टान्त दीजिये।

उत्तर—(१) घटकी उत्पत्तिमें दंड चक्र, कुम्हारादि प्रेरक निमित्त हैं क्योंकि दंड चक्र, और कुम्हारका हाथ गतिमान है और कुम्हार उस समय घड़ा बनानेकी इच्छावाला है धर्मास्तिकाय और चक्रको घूमनेकी धुरी-वे उदासीन निमित्त हैं परन्तु वे सभी निमित्त मिट्टीरूप उपादानके प्रति (धर्मास्तिकायवत्) उदासीन कारण हैं।

(२) कोई मनुष्य घोड़ पर बैठकर बाहर गाँव जाता है उसमें घोड़ा गतिमान होनेसे प्रेरक निमित्त है और धर्मास्तिकाय

उदासीन निमित्त है, परन्तु वे निमित्त उपादानरूप सगागे करनेवाले मनुष्यके प्रति (धर्मास्तिकायवत्) उदासीन कारण हैं।

[जो प्रेरक निमित्त कारण हैं वे गति या इच्छापना वतलानेके लिये प्रेरणा करते हैं—ऐसा व्यवहारनयसे कहा जाता है, किन्तु वास्तवमे किसी द्रव्यकी पर्याय दूसरे द्रव्यकी पर्यायको प्रेरक नही हो सकती।]

प्रश्न (३९५)—भावरूप निमित्त और अभावरूप निमित्तके दृष्टान्त दीजिये।

उत्तर—(१) जिमप्रकार उत्तरग (तरगे उठनेवाली) और निस्तरग (तरग रहित) दशाओको वायुका चलना या न चलना निमित्त होने पर भी वायु और समुद्रमे व्याप्यव्यापक भावके अभावके कारण कर्ताकर्मपनेकी असिद्धि होनेसे, समुद्र ही स्वय अन्तर्व्यापक होकर उत्तरग अथवा निस्तरग अवस्थामे आदि-मध्य-अन्तमे व्याप्त होकर उत्तरग अथवा निस्तरग ऐसा अपनेको करता हुआ अपने एकको ही करता प्रतिभासित होता है, परन्तु अन्यको करता प्रतिभासित नही होता ”

(२) “ उसीप्रकार ससार और नि ससार अवस्थाओको पुद्गलकर्मके विपाकका सभव (उत्पत्ति) और असभव निमित्त होने पर भी पुद्गलकर्म और जीवके बीच व्याप्यव्यापक भावका अभाव होनेके कारण कर्ताकर्मपनेकी असिद्धि होनेसे जीव ही स्वय अन्तर्व्यापक होकर ससार अथवा नि ससार अवस्थामे आदि-मध्य-अन्तमे व्याप्त होकर अपनेको ससंसार या नि ससार करता हुआ, अपने एकको ही करता हुआ प्रतिभा-

सिद्ध हो परन्तु अन्यको करता प्रतिभासित न हो। "
(श्री समयसार गाथा ८१ की टीका)

[दृष्टान्तमें–वायुका चलना वह सद्भावरूप निमित्त है और न चलना वह अभावरूप निमित्त है।

सिद्धान्तमें–पुद्गलकर्मके विपाकका संभव वह सद्भावरूप निमित्त है और उसका असंभव वह अभावरूप निमित्त है।]

प्रश्न (११६)—कर्मके उदयसे जीवमें सचमुच विकार भाव होता है–यह विधान ठीक है ?

उत्तर—(१) नहीं क्योंकि–'जीवमें होनेवाले विकारभाव वह स्वयं करता है तब कर्मका उदय निमित्त है किन्तु उन कर्मके रज कणोंने जीवको कुछ भी किया या उसपर असर–(प्रभाव) डाला–ऐसा मानना सर्वथा मिथ्या है (उसीप्रकार जीव विकार करता है तब पुद्गल–कार्माणवर्गणा स्वयं कर्मरूप परिणमित होती है–ऐसा निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध है।) जीवको विकारीरूपसे कर्मका उदय परिणमाता है और नवीन कर्मोंको जीव परिणमाता है यह निमित्त–नैमित्तिक संम्बन्ध बतलानेवाला व्यवहार कथन है। वास्तवमें जीव जड़को कर्मरूप परिणमित नहीं कर सकता और कर्म जीवको विकारी नहीं कर सकता ऐसा समझना। गोम्मटसारादि कर्म शास्त्रोंके इसप्रकार अर्थ करना ही न्यायसंगत है।

(स्वा० मंदिर ट्रस्टसे प्रकाशित हिन्दी आवृत्ति मोक्षशास्त्र —अ० १ परि० १ पृष्ठ १४८)

(२) कर्मके उदयसे जीवको विकार होता है–ऐसी मान्यता भ्रममूलक है। श्री दीपचन्दजीकृत' आत्मावलोकन" पृष्ठ १४१ में कहा है कि—

"हे मित्र अन्यलोक, स्वाग (पुद्गलकर्म), स्कन्ध, परज्ञेय द्रव्योका दोप न देख और ऐसा न जान कि "परज्ञेयकी सनिधि (निकटता) निमित्तमात्र देखकर उसने (निमित्तने) मेरा द्रव्य मलिन (विकारयुक्त) किया।" जीव स्वय ऐसा भूठा भ्रम करता है, परन्तु उन परज्ञेयोसे कभी तेरी भेंट (स्पर्श) भी नही हुई है, तथापि तू उनका दोष देखता है—जानता है यह तेरा हरामजादीपना है। एक तू उनका ही भूठा है, उनका कोई दोप नही है, वे तो सदैव सच्चे हैं।"

प्रश्न (३९७)—जब कर्मोका तीव्र उदय हो तब पुरुपार्थ नही हो सकता, ऊपरी गुणस्थानोसे भी जीव नीचे गिर जाता है—ऐसे कथनका क्या अर्थ है ?

उत्तर—(१) यह व्यवहारनयका कथन है। जीवमे ऐसी योग्यता हो तब कैसा निमित्त होता हैं उसका ज्ञान करानेके लिये वह कथन है।

(२) जीव जब स्वय अपने विपरीत पुरुषार्थसे तीव्र दोष करता है तभी कर्मके उदयको तीव्र उदय कहा जाता है, किन्तु यदि जीव यथार्थ पुरुषार्थ करे तो कर्मका चाहे जैसा उदय होने पर भी उसे निर्जरा कहा जाता है। कर्मोदयके कारण जीव गिरता ही नही।

(३) प्रवचनसार गाथा ४५की टीकामे श्रीजयसेनाचार्य कहते हैंकि-"द्रव्यमोहका उदय होनेपर भी यदि शुद्ध आत्मभावनाके बलसे मोहभावरूप परिणमित न हो तो बन्ध नही होता। पुनश्च, कर्मके उदय मात्रसे बन्ध नही होता, यदि उदयमात्रसे बन्ध होता हो तो संसारीको सर्वदा ही कर्मका उदय विद्यमान होनेसे सदैव ही बन्ध होता रहेगा, मोक्ष कभी होगा ही नही।"

ऐसा कभी नही होता ।

—इस विषयमे श्री प० फूलचन्दजी सम्पादित तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ५, सूत्र ३० की टीका, पृष्ठ २५२ मे कहा है कि.—

" वे (निमित्त) हैं अत माने गये हैं, इसलिये उनकी आवश्यकता और अनावश्यकताका तो प्रश्न नही उठता ।"

प्रश्न (३९९)–देह, इन्द्रिय और पांच इन्द्रियोके विषयोके निकट रहनेसे ही मनुष्योको ज्ञान और सुख होता है, इसलिये वे देहादि पदार्थ ज्ञान और सुखके लिये अकिंचित्कर कैसे हो सकते हैं ?

उत्तर—(१) उपादान कारणके आश्रयसे–सामर्थ्यसे ही निमित्त को हेतु कहा जाता है, किन्तु उपादानके विना परको कार्यका निमित्त नही कहा जा सकता । निमित्त तो मात्र किस उपादान ने कार्य किया उसे वतलाने वाला (अभिव्यजक) है ।

(देखो, पचाध्यायी भाग २, गाथा ३५८ के आधारसे)

(२) "उपरोक्त कथनका साधक दृष्टान्त यह है कि अग्नि अगर (चन्दन) द्रव्यकी गन्धका व्यजक होता है – – –"

(पचाध्यायी भाग २, गाथा ३५९)

(३) "उसीप्रकार यद्यपि देह इन्द्रिय और उनके विषय किसी स्थान पर ज्ञान और सुखके अभिव्यजक होते हैं, किन्तु वे स्वय ज्ञान और सुखरूप नही हो सकते ।'

(पचाध्यायी भाग २, गाथा ३६०)

(४) " जहाँ आत्मा स्वय सुखरूप परिणमित होता है वहाँ विषय क्या करते हैं ? (प्रवचनसार गाथा ६७)

(५) "अन्य द्रव्यसे अन्यद्रव्यके गुणकी उत्पत्ति नहीकी जासकती,

हो तो इन ज्ञानशून्य घटादिकमे भी वे ज्ञान क्यो उत्पन्न नही करते ?

(पचाध्यायी भाग २, गा० ३५४)

(५) यदि ऐसा कहा जाये कि चेतन द्रव्यमे ही किसी जगह वे स्पर्शादिक पदार्थ ज्ञानको उत्पन्न करते है, किन्तु यदि आत्मा स्वय चेतन है तो फिर अचेतन पदार्थोंने उनमे क्या उत्पन्न किया ? अर्थात् कुछ भी नही ।

(देखो, पचाध्यायी भाग २ गाथा ३५५)

(६) इसलिये ऐसा निश्चित होता है कि आत्माको ज्ञान और सुख उत्पन्न करने मे शरीर, पाँचो इन्द्रियाँ तथा उनके विषयो का अकिंचित्करपना है ।

(देखो, पचाध्यायी भाग २, गाथा ३५६)

['जो हेतु कुछ भी न करे वह अकिंचित्कर कहलाता है ।"]

(समयसार गाथा २६७ का भावार्थ पृष्ठ ३२८)

प्रश्न (४०१)—अतरग कारणसे (उपादान कारणसे) ही कार्यकी उत्पत्ति होती है—ऐसा न माना जाये तो क्या दोष आयेगा ?

उत्तर—(१) कार्यकी उत्पत्तिमे स्वस्थिति कारण होती है, उसमे अन्य हेतु (कारण) नही है । फिर भी "कोई हेतु" है, ऐसा माना जाये तो अनवस्थाका दोष आयेगा ।

(पचाध्यायी भाग २, गाथा ७६६, पृ० २७६
प० फूलचन्दजी द्वारा सपादित)

(२) "यहाँ मित्र द्वैत से एक उपादान और दूसरा सहकारी कारण लिया गया है. वस्तुमे कार्यकारीपनेकी **योग्यता** अन्यवस्तुके निमित्तसे नही आती यह तो उसका स्वभाव है ।

अर्थ—यहाँ ऐसी शका होती है कि—इसप्रकार तो वाह्य निमित्तो का निराकरण ही हो जायेगा। उसका उत्तर यह है कि—अन्य जो गुरु, शत्रु आदि हैं वे प्रकृत कार्यके उत्पादनमे या विध्वसमे सिर्फ निमित्तमात्र हैं। वहाँ **योग्यतामें** ही साक्षात् साधकपना है।

(२)" वैभाविक परिणमन निमित्त सापेक्ष होकर भी वह अपनी इस कालमे प्रगट होनेवाली **योग्यतानुसार** ही है। अपनी योग्यतावश ही जीव ससारी है और अपनी **योग्यतावश** ही वह मुक्त होता है। जैसे परिणमन का साधारण कारण होते हुए भी द्रव्य अपने उत्पादव्ययस्वभावके कारण ही परिणमन करता है। काल उसका कुछ प्रेरक नही है। आगम मे निमित्त विशेषका ज्ञान करानेके लिये ही कर्मका उल्लेख किया गया है। **उसे कुछ प्रेरक कारण नहीं मानना चाहिये।** जीव पराधीन है यह कथन निमित्त विशेषका ज्ञान करानेके लिये ही किया जाता है। तत्त्वत प्रत्येक परिणमन होता **है अपनी योग्यतानुसार ही।**"

(श्री प० फूलचन्दजी सम्पादित "पचाध्यायी"
गा० ६१ से ७० का विशेषार्थ, पृष्ठ १६३)

(३) श्री गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा ५८० की सस्कृत टीका के श्लोकमे कहा है कि—

निमित्तातर तत्र योग्यता वस्तुनि स्थिता।
बहिर्निश्चयकालस्तु निश्चित तत्त्वदर्शिभि ॥१॥

अर्थ—"उस वस्तुमे विद्यमान परिणमनरूप जो **योग्यता** वह

प्रश्न (४०३)–निमित्तको वास्तवमे अकिंचित्कर क्यो कहा ?

उत्तर–(१) "ससारमे या मोक्षमे आत्मा अपने आप सुखरूप परिणमित होता है; उसमे विषय **अकिंचित्कर** हैं अर्थात् कुछ नही करते। अज्ञानी लोग विषयोको सुखका कारण मानकर व्यर्थ ही उनका अवलम्बन करते हैं।"–(प्रवचनसार गाथा ६७ का भावार्थ) (२) "जो हेतु कुछ भी न करे वह **अकिंचित्कर** कहलाता है। (देखो, श्री समयसार गाथा २६७ की टीका) एक द्रव्यका व्यापार दूसरे द्रव्यमे होता ही नही। उक्त कथन से सिद्ध होता है कि आत्माको इन्द्रियजन्य ज्ञान और सुख होने मे शरीर, इन्द्रियाँ तथा उनके विषय अनुत्पादक होनेसे **अकिंचित्कर** है..."

—(पचाध्यायी भाग २, गाथा ३५६ का भावार्थ)

(३) "तत्त्वदृष्टिमे देखने पर राग–द्वेषको उत्पन्न करनेवाला अन्य द्रव्य जरा भी (किंचनापि) दिखलाई नही देता।"

—(श्री समयसार कलश २१९)

(४) "इस आत्मामे जो रागद्वेषरूप दोषो की उत्पत्ति होती है वहाँ पर द्रव्योका कुछ भी दोष नही है, वहाँ तो स्वय अपराधी ऐसा यह अज्ञान ही फैलना है"

—(श्री समयसार कलश २२०)

(५) " इसप्रकार अपने स्वरूपसे ही जानने वाले ऐसे आत्मा को अपन–अपने स्वभावसे ही परिणमित होनेवाले शब्दादिक **किंचित्मात्र** भी विकार नही करते, जिसप्रकार अपने स्वरूपसे ही प्रकाशित ऐसे दीपकको घटपटादि पदार्थ विकार नही करते उसी प्रकार। ऐसा वस्तु स्वभाव है, तथापि जीव शब्दको

(६) "...वस्तुस्वभाव परसे [illegible]
सकता इसलिये, तथा वस्तुस्वभाव परको [illegible]
इसलिये आत्मा जिस प्रकार [illegible]
(अपने स्वरूपसे ही जानता है) उसी प्रकार [illegible]
समीपतामें भी अपने स्वरूपसे ही जानता है [illegible])
अपने स्वरूपसे ही जानने वाले उस (आत्माको), वस्तुस्वभाव
से ही विचित्र परिणतिको प्राप्त ऐसे मनोहर-अमनोहर
शब्दादि बाह्य पदार्थ किंचित् विक्रिया उत्पन्न नहीं करते।"

(—श्री समयसार गाथा ३७१ से [illegible] टीका)

प्रश्न (४०४)—निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध कब कहलाता है ?

उत्तर—जिस समय वस्तु कार्यरूप परिणमित हो अर्थात् उपादानमें कार्य हो उसी समय संयोगरूप परवस्तुको निमित्त कहा जाता है। यदि कार्य न हो तो किसी सामग्रीको निमित्तकारण नहीं कहा जाता क्योंकि कार्य होनेसे पूर्व निमित्त किसका ? कार्य-कारणका समय एक ही होता है। निमित्त-नैमित्तिक संबंध एक समयकी वर्तमान पर्यायमें ही होता है।

प्रश्न (४०५)—निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध दृष्टान्त देकर समझाइये।

उत्तर—(१) केवलज्ञान नैमित्तिक है और लोकालोकरूप समस्त ज्ञेय निमित्त है। [प्रवचनसार गाथा २६ की टीका]

[२] सम्यग्दर्शन नैमित्तिक है और सम्यग्ज्ञानीके उपदेशादि निमित्त है। —[आत्मानुशासन गाथा १० की टीका]

[३] सिद्धदशा नैमित्तिक है और पुद्गल कर्मका अभाव निमित्त है। —[समयसार गाथा ८३ की टीका]

[४] "जिस प्रकार अध कर्मसे उत्पन्न हुआ और उद्देशसे उत्पन्न हुआ ऐसा जो निमित्तभूत [आहारादि] पुद्गल द्रव्यका प्रत्याख्यान [त्याग] न करता हुआ आत्मा [मुनि] नैमित्तिक-भूत वन्ध साधक भावका प्रत्याख्यान नही करता, उसीप्रकार समस्त पर द्रव्योका प्रत्याख्यान न करता हुआ आत्मा उसके निमित्तसे होने वाले भावोको नही त्यागता।"

[समयसार गाथा २८६—८७ की टीका]

इसमे वन्ध साधक भाव नैमित्तिक है और अध कर्म तथा उद्देशिक आहारादि परद्रव्य निमित्त हैं।

१—"जिस पापकर्मसे आहार उत्पन्न होता है उस पापकर्मको **अधःकर्म** कहा जाता है तथा उस आहारको भी अध कर्म कहा है। जो आहार ग्रहण करनेवालेके निमित्तसे ही बनाया गया हो उसे **उद्देशिक** कहा जाता है। ऐसे आहार (अध कर्म और उद्देशिक) के निमित्तसे आत्माके जो भाव होते हैं वे नैमित्तिक वन्धसाधक भाव हैं।

२—**निमित्त—नैमित्तिक सम्बन्ध मात्र कर्म और जीवके बीच ही होता है यह बात यथार्थ नहीं है;** कारण बतलाना हो तब उपादानकारण और निमित्त कारण कहे जाते हैं।

३—निमित्त कारण और उसके साथका सम्बन्ध बतलाना हो

कहा उसमे शरीराश्रित उपदेश, उपवासादिक क्रिया और शुभराग-रूप व्यवहारको मोक्षमार्ग न जानो यह बात आ जाती है।]

(२) 'उपादान निजगुण जहाँ, तहँ निमित्त पर होय,
भेदज्ञान परवान विधि, विरला बूझे कोय।"
(बनारसी विलास)

अर्थ—जहाँ **निजशक्तिरूप उपादान हो वहाँ पर निमित्त होता ही है।** उसके द्वारा भेदज्ञान प्रमाणकी विधि (व्यवस्था) है। यह सिद्धान्त कोई विरले ही समझते है।

भावार्थ—जहाँ उपादानकी योग्यता हो वहाँ नियमसे निमित्त होता ही है। निमित्तकी प्रतीक्षा करना पडे ऐसा नही होता, और निमित्तको हम जुटा सकते है–ऐसा भी नही होता। निमित्तकी प्रतीक्षा करनी पडती है या उसे मैं ला सकता हूँ–ऐसी मान्यता परपदार्थ मे अभेदबुद्धि अर्थात् अज्ञानसूचक है। उपादान और निमित्त दोनो असहायरूप स्वतत्र हैं यह उनकी मर्यादा है।

(३) "उपादान बल जहँ तहाँ, नहिं निमित्तको दाव,
एक चक्र सौ रथ चलै, रविको यहै स्वभाव।"
(बनारसी विलास)

अर्थ —जहाँ देखो वहाँ उपादानका ही बल है, (निमित्त होता है) परन्तु निमित्तका (कार्य करनेमे) कोई भी दाव (बल) नही है। एक चक्रसे रवि (सूर्य) का रथ चलता है वह उसका स्वभाव है।

[उसीप्रकार प्रत्येक कार्य उपादानकी योग्यतासे (सामर्थ्यसे) ही होता है।]

प्रश्न (४०७)–"हौं जानै था एक ही, उपादान सो काज,
थकै सहाई पौन बिन, पानी माँहि जहाज।"
(बनारसी विलास)

कार्य अनुसार निमित्तमे कारणपनेका भिन्न-भिन्न आरोप किया जाता है। इससे ऐसा सिद्ध होता है कि निमित्तसे कार्य नही होता परन्तु कथन होता है, इसलिये उपादान सच्चा कारण है और निमित्त आरोपित कारण है।

वास्तवमे तो, निमित्त ऐसा प्रसिद्ध करता है कि—नैमित्तिक स्वतत्र अपने कारणसे परिणमन कर रहा है, तो उपस्थित दूसरी अनुकूल वस्तुको निमित्त कहा जाता है।

प्रश्न (४०८)—निमित्तके विना कार्य होता है ?

उत्तर—(१) निश्चयसे तो निमित्तके विना ही सर्वत्र स्वया उपादान की योग्यतासे ही कार्य होता है, उस काल उचित निमित्त होता है यह व्यवहार कथन है।

नियम ऐसा है कि—**निश्चयसे उपादानके बिना कोई कार्य नहीं होता**। कार्य वह पर्याय है और निश्चयसे वह परसे (निमित्तसे) निरपेक्ष होती है।

[देखो, १—समयसार गाथा ३०८ से ११ तथा उसकी सस्कृत टीका। २—पचास्तिकाय गाथा ६२ स० टीका। ३—वनारसीदासजी के उपादान—निमित्त दोहे, नम्बर ४-५-६। ४—प्रवचनसार गाथा १०० की जयसेनाचार्यकृत टीका अध्याय २, गाथा ८, पृष्ठ १३६, तथा प्रवचनसार गाथा१६० और उसकी अमृतचन्द्राचार्यकृत टीका]

(२) निमित्त व्यवहारकारण है—ऐसा न माननेवालेको "निमित्तके बिना कार्य नही होता"—ऐसा बतलाया जाता है, किन्तु व्यवहारके कथनोको निश्चयके कथन समझना वह भूल है।

[देखो, समयसार गाथा ३२४—३२७ तथा टीका]

३—ऐसा नही है कि कभी कार्यके लिये निमित्तकी प्रतीक्षा करना पडे, अथवा निमित्त मिलाना पडें,अथवा निमित्त है इसलिये उपादानमे कार्य होता है।

तातै चिद्‌भावनि विषै, समरथ चेतन राउ,
राग–विरोध मिथ्यातमे समकितमे सिव भाउ।"-
(समयसार नाटक पृ० ३५३)

अर्थ—इसप्रकार कोई मनुष्य विपरीत पक्ष ग्रहण करके श्रद्धान करता है कि वह राग विरोधरूप भावोसे कभी भिन्न हो ही नही सकता। सद्‌गुरु कहते हैं कि—पुद्‌गलके सयोगसे रागादि नही है यदि हो तो जगतमे पुद्‌गलका सग सदैव है तो जीवको सहज शुद्ध परिणाम करनेका अवसर ही नही मिलेगा, इसलिये अपने (शुद्ध या अशुद्ध) चैतन्य परिणाममे चेतनराजा ही समर्थ है। राग–विरोधरूप परिणाम अपने मिथ्यात्व भावमे हैं, और अपने सम्यक्त्व परिणाममे शिव–भाव अर्थात् ज्ञान–दर्शन–सुख आदि उत्पन्न होते हैं।

(२) "अविद्या जड लघुशक्तिसे तेरी महान् शक्तिका घात नही हो सकता, परन्तु तेरी शुद्ध शक्ति भी बडी, तेरी अशुद्ध शक्ति भी बडी, तेरा (विपरीत) चितवन तेरे गले पडा और उससे परको देखकर आत्मा भूला, **यह अविद्या तेरी ही फैलाई हुई है; तू अविद्यारूप कर्ममें न पड़कर स्व को न जोड़े तो जड़ का कुछ जोर नहीं है; इसलिये अपरम्पार शक्ति तेरी है...।...'**
—(श्री दीपचन्दजीकृत "अनुभव प्रकाश")

प्रश्न (४१०)—सज्ञी पचेन्द्रियपना, मनुष्यपना, कर्मका मन्द उदय, सम्यग्ज्ञानीका उपदेश-आदि निमित्तोके बिना वास्तवमे मोक्षमार्ग प्रगट होता है ?

उत्तर—१—हाँ, क्योकि प्रत्येक द्रव्यके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव अपने रूपसे हैं और पररूपसे नही हैं इसलिये एक द्रव्यको दूसरे

उपादान पलटचो नही, तो भटक्यो ससार ।"

निमित्त—"कै केवली कै साधु कै, निकट भव्य जो होय,
सो क्षायिक सम्यक् लहै, यह निमित्त वल जोय ।"

उपादान—"केवली अरु मुनिराजके, पास रहैं वहु लोय;
पै जाको सुलटचो धनी, क्षायिक ताको होय ।"

—इससे समझमे आता है कि निमित्त तो जीवको पूर्व अनतवार मिले हैं, किन्तु अपने क्षणिक उपादान कारण विना वह मोक्षमार्ग प्राप्त नही कर सका और इसलिये ससार—वनमे भटक रहा है ।

प्रश्न (४११)—निमित्त भले ही कुछ न करे, किन्तु निमित्तके विना तो उपादानमे कार्य नही होता ?

उत्तर—१—"निमित्त विना कार्य नही होता"—यह व्यवहार नयका कथन है । उसका अर्थ यह है कि—"ऐसा नही है ।" किन्तु निमित्तका ज्ञान करानेके लिए वैसा कहा जाता है, क्योकि प्रतिसमयके उत्पाद (कार्य) के समय उचित वहिरग साधनोकी (निमित्तोकी) सनिधि (उपस्थिति—निकटता) होती ही है । उसका आधार यह है कि—

" जो उचित बहिरग साधनोकी सनिधिके सद्भावमे अनेक प्रकारकी अनेक अवस्थाएँ करता है "

—(श्री प्रवचनसार गाथा ६५ की टीका)

२—यहाँ आशय इतना ही है कि जहाँ कार्य हो, वहाँ उचित निमित्त होता ही है, न हो ऐसा नही होता ।

३—जगतमे प्रत्येक द्रव्यमे प्रतिसमय परिणमन हो ही रहा है और कार्यको अनुकूल निमित्त भी सदैव प्रतिसमय होता है; तो फिर

(१) जहाँ उपादान निश्चय होता है वहाँ निमित्त व्यवहार होता ही है।

(२) जहाँ उपादान निजगुण हो वहाँ निमित्त पर होता ही है।

(३) जहाँ देखो वहाँ उपादानका ही वल है, निमित्तका दाव कभी भी नही है।

(४) जहा प्रत्येक वस्तु असहाय (स्वतत्ररूपसे) सधती है (परिणमित होती है), वहाँ निमित्त कौन हैं ?

[यह दोहे जिज्ञासुओ को अवश्य समझने योग्य हैं।]

प्रश्न (४१२)—निमित्त उपादानको कुछ नही कर सकता, तो-शरीर मे सुई चुभ जानेसे जीवको दु ख क्यो होता है ?

उत्तर—१–जीव सदैव अरूपी होनेसे उसे सुईका स्पर्श नही हो सकता। एक आकाश क्षेत्रमे सुईका सयोग हुआ वह दु खका कारण नही है किन्तु अज्ञानी जीवको शरीरकी अवस्थाके साथ एकत्व–ममत्वबुद्धि होती है इसलिये उसे जो दु.ख होता है वह शरीरमे सुई चुभनेके कारण नही किन्तु उस प्रसग पर प्रतिकूलताकी मिथ्या कल्पनासे होता है।

२–ज्ञानीको निचली दशामे जो अल्प राग है वह शरीरके साथ एकत्वबुद्धिका राग नही है, अपनी क्षणिक निर्बलताके कारण, उसे जितना राग है उतना दु ख होता है। सुईके कारण ज्ञानी या अज्ञानी किसीको दु ख नही होता। ज्ञानी दु खरूप विकारका ज्ञाता ही है, किन्तु उसका स्वामी नही है। अज्ञानी परके साथ एकत्वबुद्धि करके विकारका स्वामी बन-कर दु खी होता है।

को क्रम-परिणामसे पाते-प्राप्त करते-पहुचते हैं ऐसे "अर्थ" वे पर्यायें हैं ।" (प्रवचनसार गाथा ८७ की टीका)

२-"उपादान निमित्तको पाकर परिणमित होता है"-यह कथन व्यवहारनयका है। यह मात्र निमित्तका ज्ञान करानेके लिये है। उपादान कभी भी वास्तवमे निमित्तको प्राप्त नही करता,इसलिये 'किसी स्थानपर व्यवहारनयकी मुख्यता सहित व्याख्यान है उसे "ऐसा नही है किन्तु निमित्तादिकी अपेक्षासे यह उपचार किया है'-ऐसा जानना चाहिये।'

—(देहलीसे प्र० मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ० ३६९)

३-" उसी प्रकार जिसने पूर्व अवस्था प्राप्तकी है ऐसा द्रव्य भी-कि जो उचित वहिरग साधनोकी सनिधिके सद्भाव मे अनेक प्रकारकी अनेक अवस्थाएँ करता है वह-अतरग साधन-भूत स्वरूप कर्ताके और स्वरूप कारणके सामर्थ्यरूप स्वभाव द्वारा अनुगृहीत होने पर, उत्तर अवस्थारूप उत्पन्न होता हुआ उस उत्पाद द्वारा लक्षित होता है '

—(श्री प्रवचनसार गाथा ९५ की टीका)

इसप्रकार प्रति समयके उत्पाद (कार्य) के समय उचित वहिरग साधनोकी (कर्मादि निमित्तोको) सनिधि(उपस्थिति-निकटता) होती ही है-ऐसा यहाँ बतलाया है।

४" ऐसा होनेसे, सर्व द्रव्योको, निमित्तभूत अन्य द्रव्य अपने (अर्थात् सर्व द्रव्योके) परिणामके उत्पादक है ही नही, सर्व द्रव्य ही निमित्तभूत अन्य द्रव्योके स्वभावको स्पर्श न करते हुए, अपने स्वभावसे अपने परिणाम भावरूप उत्पन्न होते हैं।" (श्री समयसार गाथा ३७२ की टीका)

स्वतत्र और असहाय है, इसलिये जीवकी इच्छा या अभिप्राय चाहे जिसप्रकारके होने पर भी उसकी क्रियावती शक्तिका परिणमन उनसे (अभिप्राय या इच्छासे) स्वतत्ररूपसे उस समय की उस पर्यायके धर्मानुसार होता है

(४) नरकगतिके भवका वन्ध अपने पुरुषार्थके दोपसे हुआ था, इसलिये योग्य समयमे उसके फलरूपसे जीवकी अपनी योग्यताके कारण नारकका क्षेत्र सयोगरूपसे होता है, कर्म उसे नरकमे नही ले जाता। कर्मके कारण जीव नरकमे जाता है–ऐसा कहना तो मात्र उपचार कथन है। जीवका कर्म के साथ निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध वतलानेके लिये शास्त्रोमे वह कथन किया है, परन्तु वास्तवमे जडकर्म जीवको नरकमे ले जाता है–ऐसा वतलानेके लिये नही किया।

(स्वा० म० ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित हिन्दी आवृत्ति मोक्षशास्त्र अ० ३, सूत्र ६ की टीका पृ० ३०७)

प्रश्न (४१५)–उपादान और निमित्त कारणोको अन्य किन नामो से कहा जाता है ?

उत्तर–(१) उपादानको अतरग कारण और निमित्तको वहिरगकारण कहते हैं ?

(२) उपादानको अनुपचार (निश्चय) और निमित्तको उपचार (व्यवहार) कारण कहा जाता है।

(३) निमित्त कारणको सहकारी कारण भी कहा जाता है।

प्रश्न (४१६)–निमित्तकारणोमे कौन–कौनसे भेद पडते हैं ?

उत्तर—अनेक निमित्तकारणोमे जो मुख्य निमित्त हो उसे अतरग (निमित्त) कारण कहा जाता है और गौण निमित्त हो उसे

प्रश्न (४१७)–उत्पादन कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—'उत्पत्तिके कारणको उत्पादन कारण कहते हैं। द्रव्योंकी **ध्रुवता तथा पूर्व पर्यायका व्यय वह उत्पादन कारण है।** यदि ऐसा न माना जाये तो ..."केवल सर्ग (उत्पाद) शोधनेवाले कुम्भकी (व्यय और ध्रौव्यसे पृथक् मात्र उत्पाद करनेवाले घडे की) उत्पादन कारणके अभावके कारण, उत्पत्ति ही नही होगी, अथवा तो असत्का ही उत्पाद होगा। वहाँ, (१) यदि कुम्भकी उत्पत्ति न हो, तो सभी भावोकी उत्पत्ति ही नही होगी (अर्थात् जिसप्रकार कुम्भकी उत्पत्ति नही होगी उसीप्रकार विश्वके किसी द्रव्यमे किसी भी भावका उत्पाद ही नही होगा यह दोष आयेगा) अथवा (२) यदि असत्का उत्पाद हो तो व्योम पुष्प–(आकाशके फूल) आदिके भी उत्पाद होगा। (अर्थात् शून्यमेसे भी पदार्थ उत्पन्न होने लगेंगे यह दोष आयेगा।)"

(श्री प्रवचनसार गाथा १०० की टीका)

प्रश्न (४१८)–सहार (व्यय) कारण किसे कहते है ?

उत्तर—'सहार (–नाश, व्यय) के कारणको सहारक कारण कहा जाता है। उत्पाद और ध्रौव्य रहित अकेले व्ययको माननेवाला सहारके कारणको नही मानता, **इसलिये व्यय (संहार) का कारण उत्पाद और ध्रौव्य है,** उसे न माना जाये, तो–"मात्र सहार आरम्भ करनेवाले मृत्तिका पिण्डका (उत्पाद और ध्रौव्य रहित अकेला व्यय करनेवाले मृत्तिका पिण्डका), **संहार कारणके अभावके कारण** सहार ही नही होगा, अथवा

(दे० से, प्रकाशित मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ४५६)

[नोट—यहाँ ऐसा बतलाया है कि—जहाँ क्षणिक उपादानकी योग्यता हो वहाँ निमित्त कारण होते ही हैं, और उन दोनोको समग्ररूपसे समर्थकारण कहते हैं।]

२—बनारसीविलास—उपादान—निमित्त—दोहामे कहा है कि—

"उपादान निज गुण जहाँ, तहँ निमित्त पर होय,
भेदज्ञान प्रमाण विधि, विरला बूझै कोय"

अर्थ—जहाँ, निज शक्तिरूप उपादान तैयार हो वहा परनिमित्त होता ही है,—ऐसी भेदज्ञान प्रमाणकी विधि (व्यवस्था) है, यह सिद्धान्त कोई विरले ही समझते हैं।

[यहाँ उपादान—निमित्त दोनोको ही समग्ररूपसे समर्थकारण कहा है।]

३—" कोई कारण ऐसे है कि—जिनके होनेसे कार्य अवश्य सिद्ध होगा ही तथा जिनके न होनेसे कार्य सर्वथा सिद्ध नही होगा, जैसे कि—सम्यग्दर्शन—ज्ञान—चारित्रकी एकता होनेसे तो मोक्ष होता है और वैसा हुए बिना सर्वथा मोक्ष नही होता।"

(देहली० मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ४६२)

[यहाँ क्षणिक उपादानको समर्थकारण कहा है, किन्तु वहाँ उचित कर्मका अभाव निमित्त कारण होता है—ऐसा समझना।]

प्रश्न (४२०)—असमर्थ कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—"भिन्न—भिन्न प्रत्येक सामग्रीको असमर्थ कारण कहते हैं। असमर्थ कारण कार्यका नियामक नही है।"

(जैन सि० प्रवेशिका)

होनेसे कार्य हो अथवा न भी हो, जैसे कि—मुनिलिंग धारण किये बिना तो मोक्ष नही होता, **परन्तु मुनिलिंग धारण करने से मोक्ष हो अथवा न भी हो...**"

(मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृष्ठ ४६२)

[१—भावलिंग रहित बाह्य मुनिलिंग (अर्थात् अट्ठाईस मूलगुणका पालन, नग्न दिगम्बर दशा) को यहाँ असमर्थ कारण कहा है।

२—जहाँ क्षणिक उपादान कारण हो वहाँ निमित्त कारण होता ही है। उन दोनोको समग्ररूपसे समर्थ कारण कहते हैं। अकेला क्षणिक उपादान कारण कभी होता ही नही, इसलिये भावलिंग मुनिपना हो वहाँ बाह्य मुनिलिंग नियमसे होता है—ऐसा समझना।]

४—क्रोधोत्पत्तो पुन वहिरग यदि भवेत् साक्षात्।
न करोति किञ्चिदपि क्रोध तस्य क्षमा भवति धर्म इति।

अर्थ—क्रोध उत्पन्न होनेके **साक्षात् बाह्य कारण मिलने पर भी** जो अल्प भी क्रोध नही करता उसके उत्तम क्षमाधर्म होता है।

(श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत द्वादशानुप्रेक्षा—७१)

[यहाँ बाह्य कारण अर्थात् निमित्तकारण अकेला है इसलिये उसे असमर्थ कारण समझना।]

श्न (४२१)—साधकतम कारण किसे कहते हैं ?

तर—क्षणिक उपादानकी योग्यताको साधकतम कारण कहते हैं —(विशेषके लिये देखिये, श्री प्रवचनसार गाथा १२६ की टीका)

जीव ससारदशामे या धर्मदशामे अकेला ही स्वय अपना कारण है, क्योकि वह अकेला ही करण (कारण) था।

उत्तर—निमित्त कारणको सहकारी कारण भी कहते हैं।

दृष्टान्त—"अघातिकर्मोंके उदयके निमित्तसे शरीरादिकका सयोग होता है, मोहकर्मका उदय होने पर शरीरादिकका संयोग आकुलताका वाह्य सहकारी कारण है। अतरग मोहके उदयसे रागादिक हो और वाह्य अघाति कर्मोंके उदयसे रागादिकके कारणरूप शरीरादिकका सयोग हो तव आकुलता उत्पन्न होती है। मोहके उदयका नाश होनेपर भी अघाति कर्मोंका उदय रहता है, किन्तु वह कुछ भी आकुलता उत्पन्न नही कर सकता, परन्तु पूर्वकालमे आकुलताको सहकारी कारण था, इसलिये अघातिकर्मोंका नाश भी आत्माको इष्ट ही है"

(मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ४५२)

[यहाँ द्रव्य मोहकर्मके उदयको अतरग और शरीरादिको वाह्य सहकारी कारण कहा है। आकुलतामे वे दोनो निमित्त कारण हैं।]

प्रश्न (४२५)—जीवका दूसरे द्रव्य उपकार करते हैं—ऐसा कथन तत्त्वार्थसूत्रमे आता है उसका क्या अर्थ ?

उत्तर—श्री परमात्मप्रकाश अ० २, गाथा २६–२७ मे इस अर्थसे कहा है कि—परद्रव्य जीवका उपकार करते हैं वह व्यवहारकथन है, अर्थात् वास्तवमे उपकार नही करते किन्तु स्व-सवेदन लक्षणसे विरुद्ध विभाव परिणतिमे रत हुए जीवको वे ही निश्चयसे दु खके कारण (निमित्त कारण) हैं।

उस गाथाके शीर्षक निम्नानुसार हैं.—

१—"अव, जीवका व्यवहारनय द्वारा अन्य पाँचों द्रव्य

२–रागादि विकाररूप परिणमन वह जीवका स्वतंत्र नैमित्तिक कार्य है और द्रव्यकर्मका उदय वह पुद्गलका स्वतत्र कार्य है तथा जीवके विकारका वह निमित्तमात्र है।

३–जीवके रागादि अज्ञानभाव वह अशुद्ध उपादानकारण है–निश्चयकारण है और द्रव्यकर्मका उदय वह निमित्त कारण है–व्यवहार कारण है।

श्री समयसार (हिन्दी) गाथा १६४–६५ पृष्ठ २३८ जयसेनाचार्य टीका मे कहा है कि:—
निर्विकल्पसमाधिभ्रष्टाना मोहसहित कर्मोदयो व्यवहारेण निमित्त भवति। निश्चयेन पुन अशुद्धोपादान कारण स्वकीय रागादि अज्ञानभाव एव। १६४–१६५।

४—जीवका रागादि विकाररूप परिणमन निश्चयसे (वास्तवमे) निरपेक्ष है।

–(पचास्तिकाय गाथा ६२ की टीकाके आधार पर)

५—तत्त्व दृष्टिसे आत्मा ज्ञाता है और कर्म ज्ञेय है, इसलिये उनके बीच ज्ञाता-ज्ञेय सम्बन्ध है, परन्तु जो ऐसे ज्ञाता-ज्ञेयके सम्बन्धको चूकते हैं वे ही जीव रागादि विकार-रूप परिणमन करते हैं और उन्हे द्रव्यकर्मका उदय निमित्तमात्र कारण अर्थात् व्यवहारकारण कहा जाता है।

—इससे ऐसा समझना कि—निमित्त (परवस्तु) जीवको पराधीन करता है, बिगाडता है अथवा सुधारता है–ऐसी परतन्त्रता माननेरूप मिथ्यादृष्टिपना छोडकर स्वाश्रयी सच्ची दृष्टि करना योग्य है।

(स्वा० मं० ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित हिन्दी आवृत्ति मोक्षशास्त्र, अ० ७ की भूमिका पृ० ४६४-६५)

अपनी प्रज्ञाके अपराधसे शास्त्रके अर्थको तथा आगे-पीछेकी गाथाओंकी संधिको न समझनेवाले, जीवकी अवस्थामें रागादि होनेके सम्बन्धमें स्फटिक के दृष्टान्त द्वारा प्ररूपणा करते हैं, तत्सम्बन्धी स्पष्टीकरणः—

प्रश्न (४१०)—श्री समयसार बन्ध अधिकार गाथा २७८-७९ में-स्फटिक स्वभावसे शुद्ध होने पर भी लाल आदि रंगोंके संयोग से लालादिरूप किया जाता है, उसी प्रकार आत्मा स्वभावसे शुद्ध होने पर भी अन्य द्रव्यों द्वारा रागी आदि किया जाता है। -ऐसा कहा है, उस पर से ऐसा माना जाये कि—"जैसा कर्मका उदय हो तदनुसार ही-तद्रूप ही-जीवको विकार करना पड़ता है-ऐसा वस्तुका स्वभाव है तो "यह मान्यता ठीक है ?

उत्तर—१-नहीं (यह मान्यता झूठी है)इस विषयका स्पष्टीकरण श्री समयसार नाटक बंधद्वारमें निम्नानुसार किया है कि—

"जैसे नाना बरन पुरी बनाई दीजे हेठ
उज्जवल विमल मनि सूरज-करांति है
उज्जवलता भ सै जब वस्तुको विचार कीजे
पुरी की झलक सो बरन भाँति-भाँति है।
तैसे जीव दरब को पुग्गल निमित्तरूप
ताकी ममता सो मोह मदिरा को माति है

भेदग्यान दृष्टिमौ मुभाव साधि लीजै तहाँ
साँचो सुद्ध चेतना अवाची सुख साति है ॥" ३४ ॥

अर्थ —जिस प्रकार स्वच्छ और श्वेत सूर्यकान्त अथवा स्फटिक मणिके नीचे अनेक प्रकारके रगीन डाक रखे जायें तो वे अनेक प्रकारके रग विरगे दिखने लगते हैं, और यदि वस्तुके मूल स्वरूप का विचार किया जाये तो उज्ज्वलता ही दिखाई देती है। उसी प्रकार जीव द्रव्यको पुद्गल तो मात्र निमित्तरूप है (किन्तु) उसकी ममताके कारणसे मोह–मदिराकी उन्मत्तता होती है। तथापि भेद विज्ञान द्वारा स्वभावका विचार किया जाये तो सत्य और शुद्ध चैतन्यकी वचनातीत सुख शाति प्रतीत होती है ॥ ३४ ॥

२—ऊपरकी गाथा, टीका और उसके कलशके अनुसधानमे समयसार गा० २८० मे इस विषयका स्पष्टीकरण किया गया है। वहाँ वतलाया है कि–वस्तु स्वभावको जाननेवाले ज्ञानी (आत्मा) अपने शुद्ध स्वभावसे ही च्युत नही होते, वे कर्मका उदय होने पर भी राग–द्वेष–मोह भावके कर्ता नही होते। और गाथा २८१ मे कहा है कि वस्तु स्वभावको न जाननेवाले ऐसे अज्ञानी जीव कर्मके साथ एकत्वबुद्धि करते हैं, और भेदज्ञान नही करते इसलिये वे कर्मके उदयमे युक्त होकर राग–द्वेष–मोहादि भावके कर्ता होते हैं।

३—समयसार–बध अधिकारकी गाथाओमे ऐसा समझाया है कि —आत्माका ध्रुवस्वभाव अबध है, उसका जो आश्रय नही करते उन्हीको भाव तथा द्रव्यबध होता है, और जो ध्रुवस्वभावका आश्रय करते हैं उन्हे भाव तथा द्रव्यबध नही होता। [सम्यग्दृष्टिको अपनी निर्बलताके कारण अल्पबध होता है उसे गौण माना है।]

४—समयसार गाथा ३१२ से ३१५ मे भी तदनुसार बतलाया

(देखो, समयसार (हिन्दी) गा० २१५, पृष्ठ ३०४,
श्री जयसेनाचार्यकृत टीका)

तीर्थंकर प्रकृति आदि परम्परा निर्वाणका कारण हैं।

(देखो, समयसार (हिन्दी) गाथा १२१-१२५ की
श्री जयसेनाचार्यकृत टीका पृष्ठ १८६)

५-" विपरीत अभिनिवेश रहित श्रद्धानरूप ऐसा जो सिद्धिके **परम्परा हेतुभूत** भगवत पचपरमेष्ठीके प्रति चलता-मलिनता-अगाढता रहित उत्पन्न हुआ निश्चल भक्तियुक्तपना वही सम्यक्त्व है . "

—(गुज० आवृत्ति नियमसार गा० ५१-५५ की टीका)

प्रश्न (४२९)-सम्यग्दृष्टिका शुभभाव वह परम्परासे धर्मका कारण है-ऐसा शास्त्रमे कुछ स्थानो पर कहा जाता है उसका क्या अर्थ ?

उत्तर—"सम्यग्दृष्टि जीव अपने स्वरूपमे जब स्थिर नही रह सकते तब राग-द्वेष तोडनेका पुरुषार्थ करते हैं, परन्तु पुरुषार्थ निर्बल होनेसे अशुभभाव दूर होता है और शुभ रह जाता है। उस शुभभावको वे धर्म या धर्मका कारण नही मानते, परन्तु उसे आस्रव जानकर दूर करना चाहते हैं, इसलिये जब वह शुभ-भाव दूर हो जाता है उस समय जो शुभभाव टला उसे शुद्ध-भाव (धर्म)का **परम्परा कारण** कहा जाता है, साक्षात्‌रूपसे वह भाव शुभास्रव होनेसे बन्धका कारण है, और जो बन्धका कारण हो वह सवरका कारण नही हो सकता।"

भेदग्यान दृष्टिमैं सुभाव साधि लीजै तहां
सांचो सुद्ध चेतना अवाची सुख साति है ।।" ३४ ।।

अर्थ—जिस प्रकार स्वच्छ और श्वेत सूर्यकान्त अथवा स्फटिक मणिके नीचे अनेक प्रकारके रगीन डाक रखे जायें तो वे अनेक प्रकारके रग विरगे दिखने लगते हैं, और यदि वस्तुके मूल स्वरूप का विचार किया जाये तो उज्ज्वलता ही दिखाई देती है। उसी प्रकार जीव द्रव्यको पुद्गल तो मात्र निमित्तरूप है (किन्तु) उसकी ममताके कारणसे मोह-मदिराकी उन्मत्तता होती है । तथापि भेद विज्ञान द्वारा स्वभावका विचार किया जाये तो सत्य और शुद्ध चैतन्यकी वचनातीत सुख शाति प्रतीत होती है ।। ३४ ।।

२—ऊपरकी गाथा, टीका और उसके कलशके अनुसधानमे समयसार गा० २८० मे इस विषयका स्पष्टीकरण किया गया है। वहां बतलाया है कि-वस्तु स्वभावको जाननेवाले ज्ञानी (आत्मा) अपने शुद्ध स्वभावसे ही च्युत नही होते, वे कर्मका उदय होने पर भी राग-द्वेष-मोह भावके कर्ता नही होते । और गाथा २८१ मे कहा है कि वस्तु स्वभावको न जाननेवाले ऐसे अज्ञानी जीव कर्मके साथ एकत्वबुद्धि करते हैं, और भेदज्ञान नही करते इसलिये वे कर्मके उदयमे युक्त होकर राग-द्वेष-मोहादि भावके कर्ता होते हैं ।

३—समयसार-बध अधिकारकी गाथाओमे ऐसा समझाया है कि—आत्माका ध्रुवस्वभाव अबध है, उसका जो आश्रय नही करते उन्हीको भाव तथा द्रव्यबध होता है, और जो ध्रुवस्वभावका आश्रय करते हैं उन्हे भाव तथा द्रव्यबध नही होता । [सम्यग्दृष्टिको अपनी निर्बलताके कारण अल्पबध होता है उसे गौण माना है ।]

४—समयसार गाथा ३१२ से ३१५ मे भी तदनुसार बतलाया

नही दे सकता—ऐसा वतलानेके लिये **वलाधान मात्र** निमित्त-को कहा जाता है। जिसके दृष्टान्त.—

(१) " वह इन्द्रिय ज्ञानवाला जीव स्वय अमूर्त होनेपर भी मूर्त ऐसे पचेन्द्रियात्मक शरीरको प्राप्त होता हुआ, **ज्ञप्ति उत्पन्न होनेमें वलधारणका निमित्त होता है** इसलिये जो उपलभक (वतलानेवाला, जाननेमे निमित्तभूत) है ऐसे उस मूर्त (शरीर) द्वारा मूर्त ऐसी स्पर्शादिप्रधान वस्तुको—कि जो योग्य हो उसका अवग्रहण करके, कदाचित् उसके ऊपर—ऊपर की (अवग्रहसे आगे—आगे की) शुद्धिके सद्भावके कारण उसे जानता है " (प्रवचनसार गाथा ५५ की टीका)

(२) तत्त्वार्थसार अध्याय २, सूत्र ३९ मे कहा है कि—

क्रियाहेतुत्व मेतेषा निष्क्रियाणा न हीयते।
यत. खलु बलाधानमात्रमत्र विविक्षितम् ॥ ३९॥

अर्थ—धर्मास्तिकाय निष्क्रिय होने पर भी उसका क्रियाहेतु-पना नाशको प्राप्त नही होता जिससे उसे वास्तवमे **वलाधान मात्र** कहा जाता है।

(३) जिसप्रकार उपकार और आलम्बन—इन शब्दोका अर्थ निमित्त होता है उसी प्रकार **वलाधानका भी वैसा ही** अर्थ होता है। राजवार्तिक अध्याय ५, सूत्र १६–१७ के नीचे कारिका १६ मे कहा है कि —

तयो कर्तृत्वप्रसग इति चेन्नोपकारवचनाद् यष्ट्योदिवत् ॥१६॥

नही दे सकता—ऐसा बतलानेके लिये **बलाधान मात्र** निमित्त-को कहा जाता है। जिसके दृष्टान्त —

(१)" वह इन्द्रिय ज्ञानवाला जीव स्वयं अमूर्त होनेपर भी मूर्त ऐसे पचेन्द्रियात्मक शरीरको प्राप्त होता हुआ, **ज्ञप्ति उत्पन्न होनेमें बलधारणका निमित्त होता है** इसलिये जो उपलभक (बतलानेवाला, जाननेमे निमित्तभूत) है ऐसे उस मूर्त (शरीर) द्वारा मूर्त ऐसी स्पर्शादिप्रधान वस्तुको—कि जो योग्य हो उसका अवग्रहण करके, कदाचित् उसके ऊपर—ऊपर की (अवग्रहसे आगे—आगे की) शुद्धिके सद्भावके कारण उसे जानता है " (प्रवचनसार गाथा ५५ की टीका)

(२) तत्त्वार्थसार अध्याय २, सूत्र ३९ मे कहा है कि—

क्रियाहेतुत्व मेतेषा निष्क्रियाणा न हीयते।
यत. खलु बलाधानमात्रमत्र विविक्षितम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—धर्मास्तिकाय निष्क्रिय होने पर भी उसका क्रियाहेतु-पना नाशको प्राप्त नही होता जिससे उसे वास्तवमे **बलाधान मात्र** कहा जाता है।

(३) जिसप्रकार उपकार और आलम्बन—इन शब्दोका अर्थ निमित्त होता है उसी प्रकार **बलाधानका भी वैसा ही** अर्थ होता है। राजवार्तिक अध्याय ५, सूत्र १६—१७ के नीचे कारिका १६ मे कहा है कि —

तयो कर्तृत्वप्रसग इति चेन्नोपकारवचनाद् यष्टचोदिवत् ॥१६॥

उपरोक्त कारिका की सस्कृत टीका का अर्थ —

"गति–स्थितिका धर्म और अधर्म कर्ता है–ऐसा अर्थका प्रसंग आता है तो वैसा नहीं है। क्या कारण? उपकार–वचनके कारण। उपकार, बलाधान, अवलम्बनादि पर्यायवाची शब्द हैं। जिससे धर्म अधर्मके गति–स्थिति होनेमें प्रधान कर्तृत्वपनेका अस्वीकार हुआ है। जैसे—अपनी जांघके बलसे जाते हुए अन्ध (मनुष्य) को अथवा अन्य किसीको लकड़ी आदि उपकारक होते हैं–न कि प्रेरक (होते हैं) उसीप्रकार अपनी शक्तिसे स्वयमेव चलने–स्थिर रहने वाले जीव–पुद्गलोंको धर्म–अधर्म उपकारक हैं–न कि प्रेरक हैं।"

प्रश्न (४३२)–मुख्य तथा उपचार कारणोंका क्या अर्थ है?

उत्तर—उपादान वह मुख्य कारण है और निमित्त वह उपचार कारण है।

मुख्यका अर्थ निश्चय और उपचारका अर्थ व्यवहार होता है। (देखो पुरुषार्थसिद्धयुपाय (कलकत्तासे प्रकाशित) गाथा २२२ की हिन्दी टीका पृष्ठ १२२ और छहढाला–ढाल ६ का १४ वां छन्द।)

प्रश्न (४३३)–निमित्त–उपादानके प्रश्नोंमें क्या सिद्धान्त निहित है?

उत्तर—१–(१) कोई अकेले ध्रुव उपादान कारणको माने किन्तु क्षणिक उपादान तथा निमित्त कारणोंको न माने (२) कोई ध्रुव उपादान कारणको तथा निमित्त कारणको माने किन्तु क्षणिक उपादान कारणको न माने (३) कोई क्षणिक उपादान कारणको माने किन्तु ध्रुव उपादान तथा निमित्त कारणोंको न माने (४) कोई निमित्त कारणको ही माने किन्तु ध्रुव और क्षणिक उपादान कारणोंको न माने उसकी यह चारों

प्रकारकी मान्यताएँ मिथ्या हैं।

२–उपादानका कार्य उपादानसे ही होता है। निमित्त कारण कार्य कालमे होता है, किन्तु उस निमित्तकारणकी प्रतीक्षा करनी पडती है या उसे मिलाना पडता है–ऐसा कोई माने तो वह मान्यता मिथ्या है।

३–निमित्त पर है, इसलिये उसे प्राप्त नही किया जा सकता, तथापि कोई बाह्य सामग्री रूप निमित्तकारण ढूँढनेके निरर्थक कार्यमे रुके उसे आकुलता हुए विना नही रहेगी।

४–निमित्तके साथका सम्बन्ध एक समय पर्यन्त होता है-ऐसा सूक्ष्मदृष्टिवान जानता है। छद्मस्थका ज्ञानोपयोग असख्यात समयका है,इसलिये निमित्त मिलानेकी शोध व्यर्थ है।

५–निमित्त अपना उपादान है और स्व उपादानरूपसे अपना कार्य अपनेमे करता है। यदि वह पर उपादानका कार्य अशत. भी करे अर्थात् पर उपादानको वास्तवमे असर करे, उसको आधार दे, उस पर प्रभाव डाले, उसे लाभ-हानि करे, मदद करे, शक्ति दे-आदि, तो निमित्तने दो कार्य किये–एक अपना और दूसरा पर उपादानका ऐसा सिद्ध होगा, और ऐसा माननेवाला द्विक्रियावादी होनेसे वह अरिहतके मतका नही है।

६—गतिमानादि निमित्तोको (असद्भूत व्यवहारनयसे) निमित्तकर्ता-हेतुकर्ता-कहा जाता है। अन्य निमित्तोसे उनका प्रकार भिन्न बतलानेके लिये ऐसा कहा जाता है, किन्तु ऐसा ज्ञान करानेके लिये, नही कि वे निमित्त उपादानका कुछ भी कार्य करते हैं। सर्व प्रकारके निमित्त उपादानके प्रति धर्मा-

स्तिकायवत् उदासीन कारण है।

(देखो "इष्टोपदेश" गाथा—३५)

७—जीव पुद्गल गति करें तब धर्मास्तिकायकी उपस्थिति न हो ऐसा नहीं हो सकता उसी प्रकार जब क्षणिक उपादान कार्यके लिये तैयार हो तब अनुकूल निमित्त उपस्थित न हो ऐसा नहीं होता।

८—निमित्तकारण उपादान कारणके प्रति निश्चयसे (वास्तवमें) अकिंचित्कर (कुछ न करने वाला) है इसीलिये उसे निमित्तमात्र, बलाधानमात्र, सहायमात्र, अहेतुवत्—ऐसे शब्दों द्वारा सम्बोधित किया जाता है।

९—निमित्त ऐसा घोषित करता है कि उपादानका कोई कार्य मैंने नहीं किया मुझमें उसका कार्य करनेकी शक्ति नहीं है किन्तु वह कार्य उपादान अकेले ने किया है।

१०—निमित्त व्यवहार और परद्रव्य है अवश्य किन्तु वे आश्रय करने योग्य नहीं है इसलिये हेय है।

[देखो श्री समयसार गाथा ११६ से १२० की टीका—श्री जयसेनाचार्यकृत पृष्ठ १८२ द्रव्य संग्रह गा० २१ की टीका तथा सिद्धचक्र विधान पूजा छठवींकी जयमाला। (कवीश्वर संतलाल कृत) 'जय परनिमित्त व्यवहार त्याग....]

११—जितने कार्य है उतने निमित्तोंके स्वभाव भेद हैं किन्तु एक भी स्वभाव भेद ऐसा नहीं है कि जो परका उपादान का कोई कार्य वास्तवमें करे।

१२—किसी समय उपादान कारण निमित्तमें अतिशय

रख देता है और कभी निमित्त कारण उपादानमे बलात्कारसे नाना चमत्कार घुसा देता है—ऐसी मान्यता भूठी है। वह दो द्रव्यो की एकत्व बुद्धि बतलाती है। निमित्त कारणके लिये पाँचवी विभक्तिका उपयोग किया जाता है, इसलिये वह आरोपित कारण मिटकर निश्चय कारण नही हो जाता। निमित्त कारण होनेके लिये परिश्रम, तीव्र यातना या घोर तपस्या करनी पडती है—यह मान्यता भूठी है।

१३—कार्यकी उत्पत्तिके समय उपादान और निमित्त—दोनो अविकल कारण होते हैं,—ऐसी वस्तु स्वभावकी स्थिति है।

१४—पृथ्वी, जल, तेज और वायु—इन निमित्तोसे चैतन्य उत्पन्न होता है—ऐसा माननेवालेको श्री आचार्य कहते हैं कि-**उपादानके बिना कोई कार्य उत्पन्न नहीं होता।**

१५—छहो द्रव्योमे अनादि—अनन्त प्रत्येक समय कार्य होता ही रहता है, कोई भी समय किसी भी द्रव्य कार्य रहित नही होता और उस प्रत्येक कार्यके समय उपादानकारण और निमित्त कारण—दोनो सुनिश्चित् रूपसे होते ही हैं—न हो ऐसा कभी नही होता।

१६—उपादानकारण हो और चाहे जैसा निमित्तकारण हो—ऐसा माने वह भी मिथ्यामति है क्योकि उपादानके अनुकूल ही उचित निमित्त कारण होता है।

निमित्त कारण आये तभी उपादानमे कार्य होता है—ऐसी मान्यता भी भूठी है, क्योकि प्रत्येक क्षणिक उपादानकारण के समय निमित्तकारण होता ही है।

१७—उपादान—निमित्त दोनो एकसाथ अपने—अपने कारणसे होते हैं।

अर्थ—व्यवहारनय अभूतार्थ है और **शुद्धनय भूतार्थ है**—ऐसा ऋषीश्वरोने दर्शाया है, **जो जीव भूतार्थका आश्रय करता है वह** जीव निश्चयसे सम्यग्दृष्टि है।

२—श्री समयसार कलश ६, मे कहा है कि.—

अर्थ—इस आत्माको अन्य द्रव्योसे भिन्न देखना (श्रद्धा करना) ही नियमसे सम्यग्दर्शन है। कैसा है आत्मा ? अपने गुण-पर्यायोमे व्याप्त होने वाला है। पुनश्च कैसा है ? **शुद्धनय से एकत्व में** निश्चित किया गया है। पुनश्च कैसा है ? **पूर्ण ज्ञानघन है**। पुनश्च, **जितना सम्यग्दर्शन है उतना ही आत्मा है**। इसलिये आचार्य प्रार्थना करते हैं कि—**नवतत्त्वोंकी परिपाटी छोड़कर, यह एक आत्मा ही हमें प्राप्त हो ॥६॥**

३—श्री समयसार कलश ७ मे कहा है कि—

अर्थ—तत्पश्चात् **शुद्ध नयाधीन** जो भिन्न आत्मज्योति है वह प्रगट होती है, कि जो नवतत्त्वोमे प्राप्त होने पर भी अपने एकत्व-को नही छोडती।

४—श्री समयसार गाथा १३-१४-१५ मे कहा है कि—

भूतार्थेनाभिगता जीवाजीवौ च पुण्यपाप च।
आस्रवसवरनिर्जरा बधो मोक्षश्च सम्यक्त्वम् ॥१३॥

अर्थ—भूतार्थनयसे जाने हुए जीव, अजीव और पुण्य, पाप तथा आस्रव, सवर, निर्जरा, बध और मोक्ष—यह नवतत्त्व सम्यक्त्व हैं।१३।

य. पश्यति आत्मानम् अबद्धस्पृष्टमनन्यक नियतम्।
अविशेषमसयुक्त शुद्धनय विजानीहि ॥ १४ ॥

अर्थ—जो नय आत्माको बध रहित और परके स्पर्शरहित, अन्यपने रहित, चलाचलता रहित, विशेष रहित, अन्यके संयोग

७—श्री समयसार गाथा २७१ की टीका, कलश–१७३ मे कहा है कि —

(शार्दूल विक्रीडित)

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिल त्याज्य यदुक्त जिनै-
स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजित ।
सम्यड् निश्चयमेकमेव तदमी निष्कपमाक्रम्य किं ?
शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे वध्नाति सतो धृतिम् ॥१७३॥

अर्थ —आचार्यदेव कहते है कि–सर्व वस्तुओमे जो अध्यवसान होते हैं वे सभी (अध्यवसान) जिन भगवन्तोने, पूर्वोक्त रीतिसे त्यागने योग्य कहे हैं इसलिये हम ऐसा मानते हैं कि–"पर जिसका आश्रय है ऐसा व्यवहार ही सारा छुडाया है ।" तो फिर सत्पुरुष एक सम्यग्निश्चयको ही निष्कपरूपसे अगीकार करके शुद्ध ज्ञानघन–स्वरूप निज महिमामे–(आत्मस्वरूपमे) स्थिरता क्यो धारण नही करते ?

८—प० बनारसीदास रचित समयसार नाटकके आस्रव–अधिकारमे १३ वें श्लोकमे कहा है कि —

अशुद्ध नयसे बन्ध और शुद्धनयसे मुक्ति

'यह निचोर या ग्रथ को, यहै परम रस पोख,
तजै शुद्धनय बन्ध है, गहै शुद्धनय मोख" ।१३।

अर्थ —इस शास्त्रका निचोड यही है और यही परमतत्त्वका पोषक है कि–**शुद्धनयकी रीति छोड़नेसे बन्ध और शुद्धनयकी रीति ग्रहण करनेसे मोक्ष होता है ।**

तस्मात्तथा ज्ञात्वात्मान ज्ञायक स्वभावेन ।
परिवर्जयामि ममतामुपस्थितो निर्ममत्वे ॥२००॥

अर्थ —इसलिये (अर्थात् शुद्धात्मामे प्रवृत्ति द्वारा ही मोक्ष होता है इसलिये) इसप्रकार आत्माको स्वभावसे ज्ञायक जानकर मैं निर्ममत्वमे स्थित रहता हुआ ममताका परित्याग करता हूँ ।२००।

१२—श्री नियमसार गाथा ३८ तथा ५० मे कहा है कि —

जीवादिवहिस्तत्त्व हेयमुपादेयमात्मनः आत्मा ।
कर्म्मोपाधिसमुद्भवगुणपर्य्यायैर्व्यतिरिक्त ॥३८॥

अर्थ —जीवादि बाह्यतत्व हेय (त्यागने योग्य) हैं, कर्मोपाधि-जनित गुणपर्यायोसे व्यतिरिक्त आत्मा आत्माको उपादेय है ॥३८॥

पूर्वोक्तसकलभावा परद्रव्य परस्वभावा इति हेया ।
स्वकद्रव्यमुपादेय अन्तस्तत्व भवेदात्मा ॥५०॥

अर्थ —पूर्वोक्त सर्वभाव परस्वभाव हैं, परद्रव्य हैं, इसलिये हेय हैं, अन्त तत्त्व ऐसा स्वद्रव्य—आत्मा उपादेय है ।५०।

१३—**श्रीनियमसार** गाथा '१४ की टीका, कलश—२४, तथा गाथा १५ की टीका कलश २७ मे कहा है कि —

अथ सति परभावे शुद्धमात्मानमेक
सहजगुण मणीनामाकर पूर्णबोधम् ।
भजति निशितबुद्धिर्य पुमान् शुद्धदृष्टि
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूप ॥२४॥

अर्थ.—परभाव होने पर भी, सहज गुणमणिकी खानरूप और पूर्ण ज्ञानवाले शुद्ध आत्माको एकको जो तीक्ष्ण बुद्धिवाला **शुद्धदृष्टि पुरुष** भजता है, वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनीका (मुक्ति सुन्दरीका) वल्लभ बनता है ।२४।

परमार्थ बाहिर जीवगण, जानें न हेतू मोक्षका।
अज्ञानसे वे पुण्य इच्छें, हेतु जो ससारका ॥१५४॥

१७–श्री समाधितत्रमे श्री पूज्यपादाचार्य गाथा ७८ मे कहते हैं कि–

व्यवहारे सुषुप्तो य स जागर्त्यात्मगोचरे।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे ॥७८॥

अर्थ–जो कोई व्यवहारमे सोता है अर्थात् उसमे अप्रयत्नशील है, वह आत्माके कार्यमे–स्व-सवेदनमे जागृत–तत्पर रहता है,और जो इस व्यवहारमे जागता है-उसकी साधनामे तत्पर रहता है वह स्वानुभवके विषयमे सोता है ॥७८॥

१८–श्री तत्त्वानुशासनमे श्री नागदेवमुनिने कहा है कि–

स्वपरज्ञप्तिरूपत्वान्न तस्य कारणान्तरम्।
ततश्चिता परित्यज्य स्वसंवित्त्यैव वेद्यताम् ॥१६२॥

अर्थ–आत्मा स्व-परका ज्ञातास्वरूप होनेसे **उसका अन्य कोई कारण नहीं है इसलिये अन्य कारणान्तरोंकी चिंता छोड़कर स्व-संवेदन द्वारा ही आत्माका अनुभव करना चाहिये ।१६२।**

१९–श्री समयसार गाथा ४१३ मे कहा है कि–

बहुभाँतिके मुनिलिंग जो अथवा गृहस्थी लिंग जो।
ममता करे उनने नही जाना 'समयके सार' को ॥४१३॥

अर्थ–जो अनेक प्रकारके मुनिलिंगोमे अथवा गृहस्थलिगो मे ममत्व करते हैं (अर्थात् यह द्रव्यलिंग ही मोक्ष देनेवाला है–ऐसा मानते हैं), उन्होने समयसारको नही जाना है।

टीका–जो वास्तवमे "मैं श्रमण हूँ, मैं श्रमणोपासक (श्रावक) हूँ"–इसप्रकार द्रव्यलिंगमे ममकार द्वारा मिथ्या अहकार करते हैं,

परमार्थ बाहिर जीवगण, जानें न हेतू मोक्षका।
अज्ञानसे वे पुण्य इच्छें, हेतु जो ससारका ॥१५४॥

१७—श्री समाधितत्रमे श्री पूज्यपादाचार्य गाथा ७८ मे कहते हैं कि —

व्यवहारे सुषुप्तो य स जागर्त्यात्मगोचरे।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे ॥७८॥

अर्थ—जो कोई व्यवहारमे सोता है अर्थात् उसमे अप्रयत्न-शील है, वह आत्माके कार्यमे—स्व-सवेदनमे जागृत—तत्पर रहता है, और जो इस व्यवहारमे जागता है-उसकी साधनामे तत्पर रहता है वह स्वानुभवके विषयमे सोता है ॥७८॥

१८—श्री तत्त्वानुशासनमे श्री नागदेवमुनिने कहा है कि —

स्वपरज्ञप्तिरूपत्वान्न तस्य कारणान्तरम्।
ततश्चिन्ता परित्यज्य स्वसंवित्त्यैव वेद्यताम् ॥१६२॥

अर्थ—आत्मा स्व-परका ज्ञातास्वरूप होनेसे **उसका अन्य कोई कारण नहीं है इसलिये अन्य कारणान्तरोंकी चिंता छोड़कर स्व-संवेदन द्वारा ही आत्माका अनुभव करना चाहिये।१६२।**

१९—श्री समयसार गाथा ४१३ मे कहा है कि.—

बहुभाँतिके मुनिलिंग जो अथवा गृहस्थी लिंग जो।
ममता करे उनने नही जाना 'समयके सार' को ॥४१३॥

अर्थ—जो अनेक प्रकारके मुनिलिंगोमें अथवा गृहस्थलिंगो मे ममत्व करते हैं (अर्थात् यह द्रव्यलिंग ही मोक्ष देनेवाला है—ऐसा मानते हैं), उन्होने समयसारको नही जाना है।

टीका—जो वास्तवमे "मैं श्रमण हूं, मैं श्रमणोपासक (श्रावक) हूं"—इसप्रकार द्रव्यलिंगमे ममकार द्वारा मिथ्या अहकार करते हैं,

२२-श्री नियमसार गाथा ४३ की टीका, कलश ६५ मे कहा है कि —

[द्रुतविलम्बित]

भवभोग पराड्‌मुख हे यते ! पदमिद भवहेतुविनाशनम् ।
भजनिजात्मनिमग्नमते पुन,-स्तव किमध्रुववस्तुनि चिन्तया॥६५॥

अर्थ—निज आत्मामे लीन बुद्धिवाले तथा भवसे और भोगसे पराड्‌मुख हुए हे यति ! तू भवहेतुका विनाश करनेवाले ऐसे इस (ध्रुव) पदको भज, अध्रुव वस्तुकी चिन्तासे तुझे क्या प्रयोजन है ? ॥६५॥

चारो अनुयोगोके कथनका सार यह है कि-शुद्ध निर्मल अभेद द्रव्य स्वभावके आश्रयसे धर्मका प्रारम्भ, वृद्धि और पूर्णता होती है ।

उत्तर—तत्त्व सात है—१–जीव, २–अजीव, ३–आस्रव, ४–बन्ध, ५–सवर, ६–निर्जरा और ७–मोक्ष।

प्रश्न (३)–सात तत्वोका स्वरूप क्या है ?

उत्तर १—**जीव**–जीव अर्थात् आत्मा। वह सदैव ज्ञाता स्वरूप, परसे भिन्न और त्रिकाल स्थायी (रहनेवाला) है।

२—**अजीव**–जिसमे चेतना–ज्ञातृत्व नही है, ऐसे द्रव्य पाँच हैं। उनमे धर्म, अधर्म, आकाश और काल–यह चार अरूपी हैं और पुद्गल रूपी–स्पर्श, रस, गध और वर्ण सहित है।

३—**आस्रव**–जीवमे जो विकारी शुभाशुभभावरूप अरूपी अवस्था होती है वह **भावास्रव** है और उस समय नवीन कर्म योग्य रजकणोका स्वय (स्वत.) आना (आत्माके साथ एक क्षेत्रमे आना) वह **द्रव्यास्रव** है, (उसमे जीवकी अशुद्ध पर्याय निमित्तमात्र है।)

पुण्य और पाप दोनो आस्रव और बन्धके भेद हैं।

पुण्य—दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रतादिके शुभभाव जीवको होते हैं वे अरूपी अशुद्धभाव हैं, वे भाव पुण्य हैं। उस समय सातावेदनीय शुभनाम आदि कर्मयोग्य परमाणुओका समूह स्वय (स्वत) एक क्षेत्रावगाह सम्बन्धरूपसे जीवके साथ बँधता है वह द्रव्यपुण्य है, (उसमे जीवका अशुद्धभाव निमित्त-मात्र है।)

पाप—मिथ्यात्व, हिसा, असत्य, चोरी, अव्रतादिके अशुभ-भाव पाप हैं। उस समय ज्ञानावरणीय, मोहनीय, असाता-वेदनीय, आदि कर्मयोग्य पुद्गल स्वय स्वत जीवके साथ बँधते हैं वह द्रव्यपाप है, (उसमे जीवका अशुभभाव निमित्तमात्र है।)

प्रदेशोंसे अत्यन्त अभाव होना **द्रव्यमोक्ष** है।

(१) "सात तत्त्वोमे प्रथम दो तत्व 'जीव' और 'अजीव' —यह द्रव्य हैं और अन्य पाँच तत्व उनकी (जीव और अजीवकी) सयोगी और वियोगी पर्यायें (विशेष अवस्थाएँ) हैं। आस्रव और बन्ध सयोगी पर्याएँ हैं, तथा सवर, निर्जरा और मोक्ष वे जीव—अजीवकी वियोगी पर्याये।

जीव और अजीव तत्व **सामान्य हैं** और अन्य पाँच तत्व पर्यायें होनेसे **विशेष** भी कहे जाते हैं।

(२) "जिसकी दशाको अशुद्धमे से शुद्ध करना है उसका नाम तो अवश्य ही प्रथम बतलाना चाहिये, इसलिये '**जीव**' तत्त्व प्रथम कहा; फिर जिस ओर के लक्षसे अशुद्धता अर्थात् विकार होता है उसका नाम आना आवश्यक है, इसलिये '**अजीव**' तत्व कहा। अशुद्धदशामे कारण—कार्यका ज्ञान करने के लिये '**आस्रव**' और '**बंध**' तत्व कहे हैं। इनके पश्चात् मुक्तिका कारण कहना चाहिए, और मुक्तिका कारण वही हो सकता है जो बंध और बधके कारणसे विपरीत—प्रकारका हो, इसलिये आस्रवका निरोध हो वह '**संवर**' तत्व कहा। अशुद्धता—विकार निकल जानेके कार्यको '**निर्जरा**' तत्व कहा और जीव अत्यन्त शुद्ध हो जाये वह दशा '**मोक्ष**' तत्व है

[मोक्षशास्त्र प्रकाशक स्वा० म० सो० आवृत्ति अ० १, सूत्र ४ की टीका।]

प्रश्न (४)—"यदि जीव और अजीव—यह दोनो द्रव्य एकान्तरूपसे (सर्वथा) परिणामी ही हो तो (१) सयोग पर्यायरूप एक ही

"कथंचित परिणामपना" सिद्ध होनेसे जीव और पुद्गलके सयोगकी परिणति (परिणाम) से रचित शेष आस्रवादि पाँच-तत्व सिद्ध होते हैं। जीवमे आस्रवादि पाँच तत्वोके परिणमनके समय पुद्गल कर्मरूप निमित्तका सद्भाव या अभाव होता है और पुद्गलमे आस्रवादि पाँच तत्वोके परिणमनमे जीवके भावरूप निमित्तका सद्भाव या अभाव होता है। इसीसे सात तत्वोको "जीव और पुद्गलके सयोगकी परिणतिसे रचित" कहा जाता है। परन्तु जीव और पुद्गलकी सम्मिलित परिणति होकर शेष पाँच तत्व होते हैं ऐसा नही समझना चाहिये।"

(मोक्षशास्त्र प्र० स्वा० म० सो० अ० ६ की भूमिका)

प्रश्न (५)–यद्यपि जीव-अजीवका कथंचित् परिणामीपना माननेसे भेदप्रधान पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे सात तत्व सिद्ध हो गये, तथापि उनसे जीवका क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ ? क्योकि जिसप्रकार पहले अभेदनयसे पुण्य और पाप–इन दो पदार्थोंका सात तत्वोमे अन्तर्भाव किया है, उसी प्रकार विशेष अभेदनयकी विवक्षामे आस्रवादि पदार्थोंका भी जीव और अजीव इन दो ही पदार्थोमें अन्तर्भाव कर लेनेसे वे दो ही पदार्थ सिद्ध हो जायेंगे।"

उत्तर–". कौन-से तत्त्व हेय हैं और कौनसे उपादेय हैं उसका परिज्ञान हो-इस प्रयोजनसे आस्रवादि तत्त्वोका निरूपण किया जाता है।

प्रश्न (६)–उपादेय तत्व कौन-से हैं ?

उत्तर–"अक्षय अनत सुख वह उपादेय है और उसका कारण मोक्ष है। मोक्षका कारण सवर और निर्जरा हैं, उनका कारण विशुद्ध

नही जानता और जो शरीर है सो मै हूँ, शरीरका कार्य मैं कर सकता हूँ—ऐसा मानता है, शरीर स्वस्थ हो तो मुझे लाभ हो, वाह्य अनुकूल सयोगोसे मैं सुखी और वाह्य प्रतिकूल संयोगो-से दु खी, मैं निर्धन,मैं धनवान, मैं बलवान, मैं निर्बल, मैं मनुष्य, मैं कुरूप, मैं सुन्दर—ऐसा मानता है, शरीराश्रित उपदेश और उपवासादि क्रियाओमे निजत्व (अपनापन) मानता है।

इसप्रकार अज्ञानी जीव परको स्व स्वरूप मानकर अपने स्वतत्वका (जीवतत्वका) इन्कार करता है, इसलिये वह जीव-तत्व सम्बन्धी भूल करता है।

२—अजीव तत्त्व सम्बन्धी भूल—

मिथ्या अभिप्रायवश जीव ऐसा मानता है कि शरीर उत्पन्न होनेसे मेरा जन्म हुआ, शरीरका नाश होनेसे मैं मर जाऊँगा, धन, शरीर इत्यादि जड पदार्थोमे परिवर्तन होनेसे अपनेमे इष्ट—अनिष्ट परिवर्तन मानना, शरीरकी उष्ण अवस्था होने पर मुझे बुखार आया, भूख—प्यास आदिरूप अवस्था होने-पर मुझे भूख, प्यास लग रहे हैं—ऐसा मानना, शरीर कट जाने पर मैं कट गया—इत्यादिरूप अजीवकी अवस्थाको अज्ञानी जीव अपनी अवस्था मानता है,—यह उसकी अजीवतत्व सबधी भूल है, क्योकि वह अजीवको जीव मानता है। इसमे अजीव को स्वतत्व (जीवतत्व) मानकर वह अजीव तत्वको अस्वी-कार करता है।

३—आस्रव तत्त्व सम्बन्धी भूल—

मिथ्यात्व, राग, द्वेष, शुभाशुभभाव आस्त्रव हैं। वे भाव आत्माको प्रगटरूपसे दु ख देने वाले हैं, परन्तु मिथ्यादृष्टि जीव

उसमे आकुलताका अभाव है–पूर्ण स्वाधीन निराकुलता वह सुख है, परन्तु अज्ञानी ऐसा न मानकर शरीरमे, राग–रगमे ही सुख मानते हैं। मोक्षमे देह, इन्द्रिय, खान–पान, मित्रादि कुछ भी नही होता, इसलिये अज्ञानी अतीन्द्रिय मोक्ष सुखको नही मानता।–यह उसकी मोक्षतत्त्व सम्बन्धी भूल है।

इसप्रकार सात तत्त्वो सम्बन्धी भूलके कारण अज्ञानी जीव अनतकालसे ससारमे भटक रहा है।

प्रश्न (६)–अज्ञानीका जीवाजीव तत्त्वका श्रद्धान क्यो अयथार्थ है?

उत्तर—"जैन शास्त्रोमे कहे हुए जीवके त्रस–स्थावर आदि भेदोको, गुणस्थान–मार्गणा आदि भेदोको, जीव–पुद्गलादिके भेदोको तथा वर्णादि भेदोको तो जीव जानता है किन्तु अध्यात्म शास्त्रोंमें भेदविज्ञानके कारणभूत और वीतरागदशा होनेके कारणभूतवस्तुका जैसा निरूपण किया है वैसा जो नहीं जानता उसे जीव अजीवतत्त्वकी यथार्थ श्रद्धा नहीं है... जिस प्रकार अन्य मिथ्यादृष्टि निर्धारके विना पर्याय बुद्धिसे जानपनामे या वर्णादिमे अहबुद्धि रखते हैं, उसीप्रकार यह भी आत्माश्रित ज्ञानादिमे तथा शरीराश्रित उपदेश–उपवासादि क्रियाओमे अपनत्व मानता है। पुनश्च, कभी–कभी शास्त्रानुसार सच्ची बात भी वतलाता है, किन्तु वहाँ अतरग निर्धाररूप श्रद्धान नही है, इसलिये जिसप्रकार नशेवाज मनुष्य माताको माता भी कहे तथापि वह सयाना नही है, उसीप्रकार इसे भी सम्यग्दर्शनवाला नही कहते।

पुनश्च, जिसप्रकार कोई दूसरेको दूसरेसे भिन्न वतलाता हो

श्रद्धान तो ऐसा रखो कि यह भी वंधका कारण है-हेय है; यदि श्रद्धानमें उसे मोक्षमार्ग माने तो वह मिथ्यादृष्टि है।

पुनश्च, राग-द्वेष-मोहरूप जो आश्रवभाव है उसका नाश करने की तो (उसे) चिन्ता नही है और बाह्य क्रिया तथा बाह्य निमित्तोको मिटानेका उपाय रखता है, किन्तु उनके मिटानेसे कही आश्रव नही मिटते अतरग अभिप्रायमे मिथ्यात्वादि-रूप रागादिभाव हैं वही आश्रव है। उसे नही पहिचानता इस-लिये आश्रवतत्वका भी उसे सच्चा श्रद्धान नही है।"

(मोक्षमार्ग प्रकाशक (देहलीवाला-) पृष्ठ ३३३)

प्रश्न (११)—सात तत्वोकी यथार्थ श्रद्धामे देव-गुरु-धर्मकी श्रद्धा किस प्रकार आ जाती है ?

उत्तर—१ **मोक्षतत्व**—सर्वज्ञ वीतराग स्वभाव है, उसके धारक श्री अरिहत—सिद्ध हैं, वे ही निर्दोष देव हैं। इसलिये जिसे मोक्षतत्व की श्रद्धा है उसीको **सच्चे देवकी** श्रद्धा है।

२—**संवर और निर्जरा** निश्चय रत्नत्रय स्वभाव है, उसके धारक भावलिंगी आचार्य, उपाध्याय और साधु हैं वे ही निर्ग्रंथ—दिगम्बर गुरु हैं इसलिये जिसे सवर—निर्जराकी सच्ची श्रद्धा है उसे **सच्चे गुरु की** श्रद्धा है।

३—**जीवतत्वका** स्वभाव रागादि घात-रहित शुद्ध चैतन्य प्राणमय है। उसके स्वभाव सहित अहिंसा धर्म है, इसलिये जिसे शुद्ध जीवकी श्रद्धा है उसे (अपने आत्माके) अहिंसारूप **धर्मकी** श्रद्धा है।

प्रश्न (१२)—देव, गुरु और धर्म का क्या स्वरूप है ?

४—श्री उपाध्याय का स्वरूपः—

"रत्नत्रयसे सयुक्त, जिनकथित पदार्थोके शूरवीर उपदेशक और नि काक्षभाव सहित—ऐसे उपाध्याय होते हैं।"

(गाथा ७४)

[उपाध्यायके २५ गुण होते हैं। वे मुनियोमे अध्यापक होते हैं।]

५—श्री साधु का स्वरूपः—

"व्यापारसे विमुक्त, चतुर्विध (चार प्रकारकी) आराधनामे सदैव रक्त (लीन), निर्ग्रन्थ और निर्मोह ऐसे साधु होते हैं।"

(गाथा ७५)

[साधु के २८ मूलगुण होते हैं।]

आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु का सामान्य स्वरूप

जो निश्चय सम्यग्दर्शन सहित हैं, विरागी हैं, समस्त परिग्रहके त्यागी हैं, जिन्होने शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अगीकार किया है और जो अतरगमे उस शुद्धोपयोग द्वारा अपने आत्माका अनुभव करते हैं, परद्रव्यमे अह बुद्धि नही करते, अपने ज्ञानादि स्वभावको ही अपना मानते है, परभावोमे ममत्व नही करते, किसीको इष्ट—अनिष्ट मानकर उसमे राग—द्वेष नही करते, हिंसादिरूप अशुभोपयोगका तो जिन्होने अस्तित्व ही मिटा दिया है, जो अनेक वार सातवें गुणस्थानके निर्विकल्प आनदमे लीन होते है, जब वे छट्ठे गुणस्थानमे आते है तव उन्हे २८ मूलगुणोका अखण्ड पालन करनेका शुभ विकल्प आता है,—ऐसे ही जैन मुनि (गुरु) होते हैं।

४—श्री उपाध्याय का स्वरूपः—

"रत्नत्रयसे सयुक्त, जिनकथित पदार्थोंके शूरवीर उपदेशक और नि काक्षभाव सहित–ऐसे उपाध्याय होते है।"

(गाथा ७४)

[उपाध्यायके २५ गुण होते हैं। वे मुनियोमे अध्यापक होते हैं।]

५—श्री साधु का स्वरूपः—

"व्यापारसे विमुक्त, चतुर्विध (चार प्रकारकी) आराधनामे सदैव रक्त (लीन), निर्ग्रन्थ और निर्मोह ऐसे साधु होते हैं।" (गाथा ७५)

[साधु के २८ मूलगुण होते हैं।]

आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु का सामान्य स्वरूप

जो निश्चय सम्यग्दर्शन सहित हैं, विरागी हैं, समस्त परिग्रहके त्यागी हैं, जिन्होंने शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अगीकार किया है और जो अतरगमे उस शुद्धोपयोग द्वारा अपने आत्माका अनुभव करते हैं, परद्रव्यमे अह बुद्धि नही करते, अपने ज्ञानादि स्वभावको ही अपना मानते है, परभावोमे ममत्व नही करते, किसीको इष्ट–अनिष्ट मानकर उसमे राग–द्वेष नही करते, हिसादिरूप अशुभोपयोगका तो जिन्होने अस्तित्व ही मिटा दिया है, जो अनेक बार सातवें गुणस्थानके निर्विकल्प आनदमे लीन होते है, जब वे छट्ठे गुणस्थानमे आते है तब उन्हे २८ मूलगुणोका अखण्ड पालन करनेका शुभ विकल्प आता है,–ऐसे ही जैन मुनि (गुरु) होते है।

प्रश्न (२०)—उपाध्यायके २५ गुण कौन-से है ?

उत्तर—वे ११ अग और १४ पूर्वके पाठी होते है तथा निकट रहने वाले भव्य जीवोको पढाते है, यही उनके २५ गुण समझना।

प्रश्न (२१)–मुनि (साधु–श्रमण) के २८ मूल गुण कौनसे है ?

उत्तर—५ महाव्रत—हिसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रहकी विरतिरूप पाँच प्रकार।

५ समिति—ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदाननिक्षेपण और प्रतिष्ठापन।

५ इन्द्रियनिरोध—पाँच इन्द्रियोके विषयोमे इष्ट-अनिष्टपना न मानना।

६ आवश्यक—सामायिक, वदना, २४ तीर्थंकर अथवा पच परमेष्ठीकी स्तुति, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय और कायोत्सर्ग।

—इनके अतिरिक्त १–केशलोच २—वस्त्रत्याग (अचेलत्व दिगम्बरत्व), ३—अस्नानता,—४ भूमिशयन, ५–अदन्तधावन (दतौन न करना), ६-खडे-खडे आहार लेना, और ७-एक बार आहार लेना–इसप्रकार कुल २८ मूलगुण हुए।

[आचार्य, उपाध्याय और साधु–यह तीनो निश्चयरत्नत्रय अर्थात् शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्मरूप जो आत्मस्वरूपका साधन है उसके द्वारा अपने आत्मामे सदैव तत्पर (सावधान-जागृत) रहते है, बाह्यमे २८ मूलगुणके धारक होते है। उनके पास दयाका उपकरण पीछी, शौचका उपकरण कमडल और ज्ञानका उपकरण सुशास्त्र होते है। वे शास्त्र कथित् ४६ दोषों (३२ अतराय तथा १४ आहार सम्बन्धी दोष) से रहित शु[illegible] ग्रहण करते है।–वे ही मोक्षमार्गके साधक-सच्चे

प्रश्न (२०)—उपाध्यायके २५ गुण कौन-से है ?

उत्तर—वे ११ अग और १४ पूर्वके पाठी होते है तथा निकट रहने वाले भव्य जीवोको पढाते है, यही उनके २५ गुण समझना।

प्रश्न (२१)—मुनि (साधु—श्रमण) के २८ मूल गुण कौनसे है ?

उत्तर—५ महाव्रत—हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रहको विरतिरूप पाँच प्रकार।

५ समिति—ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदाननिक्षेपण और प्रतिष्ठापन।

५ इन्द्रियनिरोध—पाँच इन्द्रियोके विषयोमे इष्ट-अनिष्टपना न मानना।

६ आवश्यक—सामायिक, वदना, २४ तीर्थंकर अथवा पच परमेष्ठीकी स्तुति, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय और कायोत्सर्ग।

—इनके अतिरिक्त १—केशलोच २—वस्त्रत्याग (अचेलत्व दिगम्बरत्व), ३—अस्नानता,—४ भूमिशयन, ५—अदन्तधावन (दतौन न करना), ६-खडे-खडे आहार लेना, और ७-एक बार आहार लेना—इसप्रकार कुल २८ मूलगुण हुए।

[आचार्य, उपाध्याय और साधु—यह तीनो निश्चयरत्नत्रय अर्थात् शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्मरूप जो आत्मस्वरूपका साधन है उसके द्वारा अपने आत्मामे सदैव तत्पर (सावधान-जागृत) रहते है, बाह्यमे २८ मूलगुणके धारक होते है। उनके पास दयाका उपकरण पीछी, शौचका उपकरण कमडल और ज्ञानका उपकरण सुशास्त्र होते है। वे शास्त्र कथित ४६ दोषों (३२ अतराय तथा १४ आहार सम्बन्धी दोष) से रहित शुद्ध आहार ग्रहण करते है।—वे ही मोक्षमार्गके साधक-सच्चे

उत्तर—श्री समन्तभद्राचार्य कहते हैं कि—

हे जिनेन्द्र! तू वक्ताओमे श्रेष्ठ है, चराचर (जगम तथा स्थावर) जगत् प्रतिक्षण (प्रत्येक समय) उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य लक्षण वाला ऐसा यह तेरा वचन सर्वज्ञका चिह्न है।"

—(श्री वृहत् स्वयभूस्तोत्र, श्लोक ११४)

प्रश्न (२५)–जैनधर्म क्या है?

उत्तर—जैनधर्म राग–द्वेष, अज्ञानको जीतनेवाला आत्मस्वभाव है। अज्ञान और अशत राग–द्वेषका अभाव होनेपर निश्चय सम्यग्दर्शन होनेसे (चौथे गुणस्थानमें) जैनत्वका प्रारम्भ होता है। फिर स्वद्रव्यका आलम्वनके बल द्वारा जितने–जितने अशमे राग–द्वेपका अभाव हो उतने—उतने अशमे जैनत्व बढता जाता है और केवलज्ञान होने पर पूर्ण जैनत्व (–जैनपना) प्रगट होता है।

सर्वज्ञदेवकथित छहों द्रव्यों की स्वतंत्रतादर्शक

-: सामान्य गुण :-

(१) अस्तित्वगुणः—

मिथ्यात्ववश जो मानता 'कर्त्ता जगत भगवान को,'
वह भूलता है लोकमे अस्तित्वगुणके ज्ञानको,
उत्पाद व्ययुत वस्तु है फिर भी सदा ध्रुवता धरे,
अस्तित्वगुणके योगसे कोई नही जगमे मरे ॥१॥

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
८	३	भावको	भावका
२८	२२	दुःखी	दुःखकी
५४	२३	मिलन	मलिन
७४	४	शुद्धात्माको	शुद्धात्माकी
११६	८	लणक्ष	लक्षण